रणधीर सिनहा

की

रचनाएँ

[१९५६ और १९५७]

प्रकाशक

श्रेष्ठ साहित्यागार,

पटना

मूल्य २ रुपया ५० नये पैसे

सम्पादकों से निवेदन

*सम्पादकों को अधिकार है कि वे अपनी पत्र-पत्रिकाओं में इस संकलन की रचनाएँ प्रकाशित कर लें, किन्तु ऐसा करते समय उन्हें इस संकलन का उल्लेख अवश्य करना चाहिए तथा लेखक को इसकी सूचना भी देनी चाहिए। —लेखक

लेखकीय पता :
रणधीर सिनहा,
सिनहा लाइब्रेरी कम्पाउन्ड,
पटना—१

आवरण-मुद्रक :
ज्ञानपीठ (प्राइवेट) लिमिटेड
पटना

आवरण-शिल्पी :
विमलेन्दु सरकार

प्रथम संस्करण :
१९५८

मुद्रक :
सर्वोदय प्रेस,
पटना—४

लेखकोय

मेरी एक ऐसी आदत हो गई है जिसके चलते मैं वही करने की सोचता रहता हूँ जिसे साधारणतः हमारे लेखक और आलोचक नहीं करते। इसके फलस्वरूप मुझे लोग अजीब-सा भी समझते हैं और अन्वेषी भी।

इस संकलन के विषय में ही लीजिए—इसकी सारी रचनाएँ अप्रकाशित ही रही हैं जब कि हमारे यहाँ लेखकों की प्रकाशित रचनाएँ ही संकलित करने की परिपाटी है। मैं नहीं कह सकता कि इन रचनाओं को यत्र-तत्र प्रकाशनार्थ न भेजकर मैंने कौन-सी बुद्धिमानी की है? वैसे इसके कुछ कारण तो होंगे ही। कुछ तो मैं हिन्दी की पत्रिकाओं के प्रति आकर्षित नहीं हो सका। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हिन्दी की पत्रिकाएँ अच्छी नहीं हैं लेकिन उनमें रचनाएँ छपवाने से मुझे संतुष्टि नहीं मिली; यह दोष मेरी संतुष्टि के पेट का हो सकता है। दूसरे कुछ आलस और अहम् के चलते भी ऐसा हुआ है। जिन्होंने रचनाएँ माँगी उन्हें भेजता ही रह गया और जिन्होंने न माँगी वे मेरे लिए पराए ही बने रहे। तीसरी बात यह है कि प्रकाशित रचनाओं को मैं यहाँ रखने के पक्ष में नहीं रहा। हाँ, तीन प्रकाशित छोटी कविताएँ भूल से संकलन के दो पृष्ठ कलंकित कर गई हैं, जिसे आप अभी अपवाद मान लें तो आपका मैं आभारी हूँ और यदि आप ऐसा न मानें तब मैं क्षमा माँगने के लिए भी तत्पर हूँ।

मैंने खूब लिखा है। खूब अर्थात काफी संख्या में। हर किस्म की चीजें लिखने की कोशिश करता हूँ। आपको इसमें आपत्ति न होगी जब मैं कहता हूँ कि मैं लिखता हूँ। कैसा लिखता हूँ? यह मैं नहीं कहूँगा! यह आप ही कहें! आप निस्संकोच भाव से जो चाहें, कहें। अगर आप कहते हैं कि मैं अच्छा लिखता हूँ तब तो मेरे लिए दुखी होने की कोई बात ही नहीं जैसा मैं खुद समझता हूँ। अगर आप कहते हैं कि मैं बुरा लिखता हूँ तब भी मेरे लिए दुख की कोई बात नहीं क्योंकि अच्छा लिखने को अभी सारी जिन्दगी बाकी पड़ी है।

—रणधीर सिनहा

समर्पण

प्रथम खण्ड :—उन सभी आत्मजों को, जो दूर हैं लेकिन जिनकी शुभकामनाएँ हर संकट में मेरी डूबती बाहों को किनारा देती हैं।

द्वितीय खण्ड :—डॉ० रामखेलावन पाण्डेय, डॉ० नर्मदेश्वर प्रसाद, श्री सिद्धनाथ कुमार, डॉ० मुमताज अहमद, श्री रामनरेश पाठक, श्री श्याम सुन्दर घोष, श्री सत्येन्द्र श्रीवास्तव तथा श्री मधुकर गंगाधर को, जिनसे नया साहित्य समझने की क्षमता मिलती रही है और जिनके भाई-चारे के प्रति सदा आश्वस्त रहा हूँ।

तृतीय खण्ड :—सर्वश्री उदयशंकर पाण्डेय, विजयशंकर पाण्डेय तथा काशीनाथ पाण्डेय को जिनकी सद्भावना से यह कृति संगठित हो सकी है।

चतुर्थ खण्ड :—शेष उन सभी बन्धुओं को जिन्होंने 'विविधा' की स्थापना में मेरे थके हुए चरणों को सहारा दिया किन्तु जो स्वयं गति के पंखों की तरह अनदेखे ही रह गए।

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

एक निबन्ध, एक डायरी तथा दस रूमानी कविताएँ

निबन्ध : आइडिया—माहात्म्य : उभय पक्ष

डायरी : एक दिन की डायरी

कविताएँ : काली चिड़िया के डैने, हस्त-सेतु, आत्म-बन्धन, काँच का पिंजड़ा अयाचित मेघ, चार जोड़े पाँव, दुपहरिया, शैशव-गृह, उक्ति, रोमुषी

आइडिया-माहात्म्य : उभय पक्ष

दरअसल अंग्रेजी में इसका रूप idea है। यह जरूर भारत की चीज नहीं है क्योंकि इसका कोई अनुवाद मुझे भारतीय भाषाओं में नहीं मिल रहा, वैसे हो तो उसे आप अपने पास रखें, मुझे जब जरूरत होगी, माँग लूँगा। अभी मैं काम चलाए ले रहा हूँ। आइडिया (भगवान नहीं, मैं देवी ही कहूँगा) का रूप निराकार है। 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' की बात इनके लिए सोलह-आने सत्य है। यदि लीला का गुण-गान किया जाए तो कितने ही पुराण तैयार हो जाएँगे। निर्गुण-पंथ की होती हुई भी ये अपनी दो काया रखती हैं—अच्छी और बुरी।

इनके माहात्म्य के विषय में मैं कुछ अंग्रेजी कथन सुना रहा हूँ :—
"Ideas are like beards, men do not have them until they grow up"–Voltaire,

"An idea, like a ghost, according to the common notian of ghosts must be spoken to a little before it will explain itself"–Dickens.

लेकिन एक बात है। इनके माहात्म्य के सम्बन्ध में दूसरों के कथन उचित नहीं हैं। न मेरे लिए, न आपके लिए। मान लीजिए आपने किताबें नहीं पढ़ी हैं अथवा आप अंग्रेजी नहीं जानते हैं तब आपके लिए उन्हें समझना कठिन हो जाएगा। मान लीजिए मैं ही थोड़ा कम पढ़ा-लिखा होऊँ, तो मुझसे भी गलती हो जा सकती है। इसलिए मैं अब धारा प्रवाह अपनी ओर से ही जन-भाषण करूँगा। धाराप्रवाह—इसलिए कि उलट-फेर हो तो उसे आप ठीक कर लेंगे। जन-भाषण में ऐसा होता ही रहता है। अस्तु!

बीसवीं सदी के उतरार्द्ध में सम्पादकों के लिए यह देवी वरदान स्वरूप अवतरित हुई हैं। जिस लेखक ने सम्पादकों की नजर में अपनी आइडिया अच्छी बना ली, वह भवसागर से तर गया। उसकी पूजा-आरती क्या? पग-धूल भी पत्र-पत्रिकाओं में बेखटके छप जाती है। सम्पादक महाशयों को रचनाओं की उलट-पुलट में, आँखें नहीं गड़ानी पड़तीं। मगर आप अक्सर इन महाशयों को चश्मा लगाते देखते हैं वह या तो शौक की वजह से या दुबारा-तिबारा प्रूफ पढ़ने के कारण। रचनाओं को भी रास्ते में रुकावट नहीं मिलती। बिचारी दौड़ती-फिरती आती हैं और अपने चेहरे पर बँधे साइनबोर्ड (लेखक का नाम) दिखा कर चल देती हैं, इन्टरव्यू में समय गँवाने की बात नहीं सोचतीं। कष्ट होता है—उन लेखकों को जिनके प्रति अच्छी आइडिया नहीं होती। वे दिन-रात इनकी खोज में तपस्या करते रहते हैं। ऋषियों-मुनियों के जैसा तप-जप करते रहने पर भी इनका दर्शन मिल जाए—यह कोई जरूरी नहीं।

रोग के प्रति डाक्टरों की आइडिया बुरी हो जाती है तब रोगी के लिए भला होता है। तुरत ही आइसबैग, एडाकुलीन, पेन्सलीन, आक्सीजन बाक्स, वगैरह-वगैरह का प्रबन्ध होने लगता है। नर्सें ज्यादा खयाल करने लगती हैं। डाक्टर घंटे में दो-चार बार आ जाते हैं,; अन्यथा अस्पताल में सब रोगी-ही-रोगी हैं।

पुलिस की आइडिया जिस अंचल के प्रति बुरी हो जाती है, वहां के निवासियों की सुरक्षा-व्यवस्था भी खूब हो जाती है। जीप-गाड़ियाँ, बन्दूकें, सैनिक-टुकड़ियाँ, पहरे का जोर बढ़ जाता है। डाकुओं और दंगाइयों का क्या मजाल कि उस अंचल की ओर आँखें उठा कर भी देखें। सरकार का खयाल वैसे किसी ओर मुखातिब होना आसान नहीं है।

इंजिनियर की आइडिया किसी पुल के प्रति बुरी हो जाती है—उससे जनता का लाभ होता है। सीमेन्ट, बालू और चूने के बोरों के साथ-साथ मजदूरों की टोलियाँ बुलाकर मरम्मत पर मरम्मत होने लगती है। जन-मार्ग के मजबूत होने का यह प्रमुख कारण है। आफिसर के प्रति कर्मचारियों की

आइडिया बुरी होते ही कार्यालय में अनुशासन छा जाता है। जिस तरफ से वे महाशय शेर की तरह गुजरते हैं, उस ओर खाँसी भी हाथों से मुँह बन्दकर रोक ली जाती है। पैरों की आहट पाते ही जो इधर-उधर टहलते हैं वे अपनी-अपनी जगहों पर बैठकर काम करने लगते हैं। अगर किसी को दस बजे आने की आज्ञा हुई तो वह आठ बजे ही दफ्तर पधार जाता है। पाँच के बदले सात बजे घर जाने की तैयारी करता है। होनेवाले श्वसुर-जनों की आइडिया होनेवाले जामाता-जनों के प्रति बुरी हो जाने पर, देर से विवाह करनेवालों को संकट से छुटकारा मिल जाता है और आजन्म ब्रह्मचारी रहनेवालों की पाँचों उंगलियाँ घी में रहती हैं। पंडितों की आइडिया यजमानों के प्रति बुरी होने से, यजमानों को लाभ होता है। आप भी बुरे यजमान बनने की कोशिश कीजिए।

बाबूजनों के प्रति जनता की बुरी आइडिया बन जाने पर बाबू-वर्ग को लाभ पहुंचता है। "फलाँ बाबू, अच्छा आदमी नहीं है।"—इसका शोर हुआ कि फिर फलाँ बाबू मालामाल हो गए। हर काम के लिए जनता, घी, तेल, नमक, तरकारी, चावल और नगद-नारायण के बाजार लगा देती है। किसी बाबू के प्रति, अच्छा होने का यश फैला तो समझिए वह डूब गए। उनके पास काम निकालनेवाले एक की जगह, दस आएँगे और कोरे आशीर्वाद के शब्द सुनाकर नौ-दो-ग्यारह हो जाएँगे। बाबू बिचारे आशीर्वादों के शब्द सुनते-सुनते खीझ नहीं गए तो फिर क्या?

नए पैसे के प्रति लोगों की बुरी आइडिया बनते ही खुदरे दुकानदारों को पूरा फायदा हुआ और डाक-तार-विभाग की आमद बढ़ गई। एक रुपए में इक्कीस की जगह बीस ही पोस्टकार्ड दिए जाने लगे। नन्दू पानवाला एक-एक बीड़ा पान अलग-अलग बेंचकर रुपए में चौसठ की जगह पचास बीड़े पान देने लगा। पहले एक बीड़ा एक पैसे में, अब दो नए पैसे में! यही हाल लेमन्चूस बेचनेवालों का है। कैंची सिगरेट और बीड़ी बेचनेवालों को फायदा-ही-फायदा है। दानी लोग एक रुपए में चौसठ की जगह पूरे एक सौ भिखमंगों को आभारी बना रहे हैं। अनाज

या कपड़े की दर के प्रति आइडिया बुरी हुई कि चोर-बाजारियों की तूती बोलने लगी। सरकारी बजट के प्रति सभा-सदस्यों की आइडिया घाटे की हुई कि फिर सरकारी ट्रेजरी भरने लगी। अमुक कर, अमुक चुंगी और घाटे का बजट पूरा-पूरा हो गया।

विश्व के प्रति आइडिया बुरी होने के कारण शान्ति के नारे बुलन्द होने लगे हैं। पाण्डव इसी के अभाव में राज-पाट हार गए—मामा की धूर्तता नहीं पकड़ सके। द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के प्रति बुरी आइडिया रखते तो उन्हें प्राण-त्याग नहीं करना पड़ता।

जी, हाँ, इसका मतलब यह नहीं कि हर जगह आप अपने प्रति बुरी आइडिया फैलाने की कोशिश करें और पूर्वकथित लाभों के भागी बनें। अगर आपने किसी दुकानदार को अपने प्रति बुरी आइडिया बनाने का मौका पहले ही दे दिया है तो वह आपको आगे अपनी दुकान में घुसने न देगा। आप आ गए तो जो चीज फरमाएँगे सबका जवाब मिलेगा 'अभी नहीं है लेकिन जल्द ही आनेवाला है', और यह जल्द आनेवाले कल की तरह, कभी न आ सकेगा। अपने प्रति जनता के बीच ऐसा शोर मचाया तो आपकी नेतागिरी खतम हुई।

चुनाव के जमाने में इतने पर्चे, पोस्टर, नोटिस, तख्ते, गाजे-बाजे और लाउडस्पीकरों की भरमार क्यों हो जाती है ? सिर्फ अच्छी आइडिया बनाने के लिए। सभा-मंचों से उम्मीदवार नेता अपने तथा अपने दोस्तों के जरिए अपने प्रति अच्छी आइडिया फैलाने का ही नाटक रचते हैं। सारे नाटक चाहे वे 'राजा हरिश्चन्द्र' के हों या 'नल-दमयन्ती' के या 'सीता-हरण' के या 'अहिरावण-वध' या 'अमरसिंह राठौर' के सब जनता के दिल में किसी-न-किसी के प्रति अच्छी आइडिया बनाने के लिए ही होते हैं।

साप्ताहिक से मासिक, मासिक से द्वैमासिक या त्रैमासिक या चौमासा या अर्द्ध-वार्षिक संकलन निकालने के मूल में यही है। एन्थालाजी निकालें या शब्द कोश—उनमें भी यही बात। गोया सब की धुन है कि पाठक

हमारे प्रति अच्छी आइडिया बनाएँ। पाठक ऐसे हैं जो एकबार किसी पर ऐसा बना लिया कि हर दुकान में उसी लेखक की किताब खोजेंगे। 'दूसरा अंक' कबतक आएगा ? दुकानदार ने कह दिया—'एक हफ्ते में !' मगर ये पाठक रोज-रोज उसकी दुकान में आकर वही बात पूछते हैं। और उन्हें बीते कल की बात याद रही तो चुपके-चुपके दुकान में टहला करेंगे जैसे उनकी चीज छिपाकर रखी हो।

हमारे जिले के नेता हैं—बाबू बहोरन सिंह, इस, बार मिनिस्ट्री में नहीं आ सके। एकमात्र कारण था चीफ मिनिस्टर की आइडिया उनके प्रति अन्तिम समय में बुरी हो गई। बिचारे इतने बड़े ओहदे से गए मात्र इसी वस्तु के कारण।

भगवान राम ने स्वर्ण-मृग के प्रति अच्छी आइडिया न फार्म की होती, उसके पीछे दौड़ते नहीं। रावण-वध नहीं होता और 'यदा यदा हि धर्मस्य' की बात सत्य न होती। तुलसीदास रामायण के बल पर अमर नहीं हो रहे, मात्र इन्हीं देवी की कृपा से हो रहे हैं। देवी ने जहाँ काया बदली—तुलसी बाबा स्वर्ग में भी नरक का आनन्द उठाने लगेंगे। मिस्टर गजराज ने तो कानून ही भंग किया था जो ग्राह की सीमा में दखल देने गए थे, परन्तु निराकार ब्रहम स्वरूपा की कृपा से भगवान विष्णु ने उनका कल्याण कर दिया। ललित कलाओं की सृष्टि इन्हीं की कृपा से हुई। राजा बलि ने वामन पर अपनी आइडिया बुरी क्या बनाई—खुद को गँवा बैठे।

थोड़े दिनों की बात है मेरे एक मित्र इन्टरव्यू में जा रहे थे। हावड़ा स्टेशन पर उतरते ही एक बड़े साहब से टकरा गए। घबराहट में बोल गए 'बेग प्लीज', बीच के कुछ शब्द छूट गए। दूसरे दिन वे ही सज्जन इन्टरव्यू ले रहे थे। उन्हें देखते ही अपने पास के लोगों से अंग्रेजी में बोले—'यह तो अंग्रेजी जानता ही नहीं।' मजबूरन किसी ने उनसे कोई प्रश्न ही नहीं पूछा और वे बेदाग छूट गए। अब वे ही मित्र सोचा करते हैं आइडिया भी कितनी बारीक चीज है। 'फस्ट एण्ड लास्ट इम्प्रेसन' की कहावत सदा

याद रखिए । काली कमरी पर दुबारा रंग नहीं चढ़ता वैसे ही जो आइडिया बन गई, वह बदलती नहीं । देखिए आप भी अपने प्रिंसपल, आफिसर या कोई प्रेमिका के सामने, 'फिजियालोजी' को 'साइकालोजी' न कह दीजिए वर्ना गुड्डी कट जाएगी ।

दूसरों के बीच अपने प्रति अच्छी आइडिया बनाने के लिए सावधानी से काम लीजिए । कहीं भी जाइए, जहाँ आपके साथ औरतें खड़ी हों उन्हें पहले मौका दीजिए वर्ना आप देहाती समझे जाएँगे । किसी बड़े-बूढ़े से मिलने जाइए तो शिष्टतावश प्रणाम कीजिए (फैशन के अनुसार 'पापा', 'डैडी' 'अंकल', 'मम्मी' कहकर उनके मुँह के पास अपना गाल भी बढ़ा सकते हैं । हाँ, स्त्रियों के प्रति जरा सावधान रहें क्योंकि 'किस' का रिवाज अभी हमारे देश में खूब जोरों से नहीं चला है) । प्रेमिका से मिलें तो 'तुम चाँद जैसी सुन्दर हो'—जरूर कहें । अगर आपकी प्रेमिका (जो वास्तव में आपकी प्रेमिका न हो, लेकिन वहम के कारण भी आप वैसा समझते हों) काली साड़ी में हो तो उससे कहें :—'काली साड़ी में तुम वैसी लगती हो जैसे बरसाती कजरारे बादलों में चाँद ।' प्रेमिका यदि नीली साड़ी में हो तो कहें—"तुम नीली नदी की श्वेत कमलिनी हो या नीलम में हीरा हो आदि ।" यदि सफेद साड़ी में हो तो उसे 'पूर्णिमा में खिली हुई जूही' कह सकते हैं । समय के अनुकूल उपमाएँ अवश्य बदलें । भाषा पर अवश्य ध्यान दें ! आपकी भाषा वैसी हो जिसे आपकी तथाकथित प्रेमिका समझ सके । अन्यथा आपको वह कवि समझकर पागल की भी संज्ञा दे सकती है ।

अपने आफिसर के सामने जाएँ तो 'गुड-मार्निंग', 'गुड-आफ्टर नून', 'गुड-इवनिंग', 'गुड-नाइट' आदि से (साँझ-सुबह का फर्क देखकर) अभिवादन करें । भाषण देते समय कहें :—"मैं बीमार था लेकिन आपकी आज्ञा कैसे टाल सकता था ?" रोज किसी कर्जदार मित्र से सुबह-शाम मिलते रहने पर भी कहें :—"आप तो दूज के चाँद हो गए हैं ।" किसी कर्जखोर मित्र से मिलने पर कहा करें :—"खैरियत तो है ।" रोज खैरियत पूछिए ।

प्रेम और घृणा, द्वेष और मेल, क्रोध और नम्रता, युद्ध और शान्ति पुण्य और पाप, विरह और मिलन, मैरेज और डाईवोर्स, हास्य और रुदन, जितने भी विरोधी जोड़े हैं—सब के मूल में आइडिया है। सब एक ही स्रोत की विभिन्न धाराएँ हैं। पति ने सोच लिया पत्नी चाय ठीक नहीं बनाती, आइडिया बुरी हो गई, तलाक का कागज प्रस्तुत हो गया! 'क्यू' में खड़े किसी बगलगीर ने आपकी जेब छूते हुए कह दिया "भाई पर्स गिर रहा है।" आपकी आइडिया अच्छी हो गई और आप दाँत निपोरते हुए कृतज्ञता का घड़ा उसके ऊपर गिरा देते हैं:—"थैंक यू, थैंक यू।" कहीं जेब कतरने का सन्देह हो गया, तब आप उसके शरीर को, नीचे से ऊपर तक, घूर-घूरकर देखने लगते हैं। उसके वस्त्र कुछ देहाती जैसे हुए तो आप उसे पुलिस में भेजने की धमकियाँ दे डालते हैं और वस्त्र जेन्टिलमैन की तरह हुए तो आप चुप लगाकर मन-ही-मन कह उठते हैं:—"नया ग्रेजुएट है।"

दफ्तर में, ट्रेन में, घर में बाजार में, अस्पताल में, सभा में—सर्वत्र आपके पीछे एक छाया रहती है जिसके संकेत पर आप नाक, मुँह और भौं सिकोड़ते-ढीलते हैं। अपनी मुद्रा के भाव बनाते-बिगाड़ते रहते हैं।

प्राचीन काल में, गाँव में अपने प्रति अच्छी आइडिया बनाने के लिए ब्रह्मचारी सूर्य की रोशनी के हटते ही गाँव के बाहर चले जाते थे। गुरु के लिए निम्नलिखित चीजें लाकर शिष्य अपने प्रति अच्छी आइडिया बनवाया करता था:—"क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासम्।

धान्यं शाकं चवांसासि गुरवे प्रीतिमावहेत्।"

"आइडिया" शब्द के उच्चारण से आप दूसरे का भाव ताड़ सकते हैं इस शब्द को दो बार कहने का अर्थ होता है कि कहनेवाला व्यक्ति प्रोत्साहन और खुशी का भाव प्रकट कर रहा है। एक बार कहने का अर्थ है कि वह प्रोत्साहन नहीं किन्तु सहमति का भाव अवश्य व्यक्त कर रहा है। तीन बार कहने से पूर्ण समर्थन की अभिव्यक्ति होती है। चार बार कहने का अर्थ होता है—मुँहमाँगा इनाम माँगो! पाँच या सात बार

कहने का अर्थ है कि सुननेवाला मूर्ख ही नहीं है वरन् उसे अपना आसन शीघ्र ही वहाँ से उठा लेना चाहिए।

अब आगे मैं अपना जन-भाषण रोक रहा हूँ। धारा-प्रवाह के कारण आप मुझ पर रोष न व्यक्त करें। इस माहात्म्य के विषय में आपको कुछ 'हिन्टस्' दे-दे रहा हूँ, उसी के अनुसार आप इसे पूरा कर लीजिए। आपको इस जन-भाषण को घटाने-बढ़ाने का पूरा अधिकार है।

'हिन्टस्' :—(१) 'आइडिया' समाज के सदस्य :—

'विचार', 'सम्मति', 'भाव', 'राय', 'सलाह', 'परामर्श', 'खयाल', 'धारणा', 'अनुमान', 'अन्दाज', 'अनुभव', 'दृष्टिकोण' इत्यादि।

(२) आइडिया के माध्यम :—फोटो देखकर, पत्र पढ़कर, कविताएँ या रचनाएँ पढ़कर, सिनेमा देखकर, रिकार्ड सुनकर इत्यादि-इत्यादि।

एक दिन की डायरी

६ मार्च, १९५६

आज उमाकान्त मुझसे अपनी पत्रिका के लिए रचना माँगने आया था। वह तरुण लेखकों की एक संस्था बना रहा है। उसी की ओर से पत्रिका निकालने का आयोजन कर रहा है। तरुण जिस उत्साह से कार्य करते हैं, वह सराहनीय होता है। उमा की क्रियाशीलता मुझे छू गई है।

आज वह अपनी पत्रिका के सहायतार्थ नगर के दो कीर्तिवानों के यहाँ गया था। पहले कीर्तिवान नगर के लब्धप्रतिष्ठित दानकर्मी प्रकाशक थे। उन्होंने उमा से उसका निवेदन सुनकर कहा :—"मैं किसी छोटे अखबार की सहायता नहीं करता, फिर नवयुवक क्लब का क्या भरोसा? नवयुवक जोश में आकर अखबार निकालते हैं मगर पैसे का उपयोग करना नहीं जानते। इसलिए क्षमा कीजिए मैं लाचार हूँ। यों साहित्य-सम्मेलनों परिषदों तथा ख्याति प्राप्त गोष्ठियों को मैंने पचीस हजार तक की रकम दी है और देता रहूँगा! पहले आप अपने अखबार के लिए बड़े लेखकों के लेख जुटाइए। तब मैं आपकी पत्रिका छाप दूँगा।"

दूसरे कीर्तिवान, नगर के प्रतिष्ठित लेखक थे। उन्होंने कहा था :—"मैं किसी छोटे अखबार की सहायता नहीं करता। नवयुवक जोश में आकर अखबार निकालते हैं, मगर रचनाओं का उपयोग करना नहीं जानते। इसलिए क्षमा कीजिए मैं लाचार हूँ! यों मासिक, त्रैमासिक आदि पत्रों को मैंने अपने लम्बे उपन्यास तक दे डाले हैं! मेरी रचनाओं की फीस अधिक होती है। पहले आप किसी बड़े प्रकाशक को खोज निकालिए जो अच्छा पारिश्रमिक रचनाओं पर दे सके। लेख तो आपको यों ही मिल जाएँगे।"

उमाकान्त उनके यहाँ से लौटकर मुझसे कहने लगा :—"प्रकाशक जी पर लक्ष्मी की कृपा है, मगर सोचते हैं छोटे लोगों को दान नहीं देना चाहिए। धन की ताकत पर अमरता के स्वप्न देख रहे हैं। लाल किले की तरह विराट सम्मेलन-भवन खड़ा करेंगे।

लेखक जी पर सरस्वती की कृपा है, मगर सोचते हैं छोटे लोगों को रचनाएँ नहीं देनी चाहिए। कलम की ताकत पर अमरता के स्वप्न देख रहे हैं। रामचरितमानस की तरह महाग्रन्थ लिखेंगे।

दोनों ही अपनी धुरी पर इतरा रहे हैं। दोनों के पास घमन्ड का एक ही अंश है। और एक मैं हूँ जो बार-बार सबके पास जाता हूँ।"

उमाकान्त चला गया तो मुझे लग रहा है वह क्रोध में एक बड़ी बात कह गया है। मुझे उसके अनुरोध को स्वीकारना ही पड़ेगा। मेरी विचार-धाराएँ उद्वेलित हो रही हैं। यश, अमरत्व की प्राप्ति घमण्ड को उभारती है ? छूत-अछूत के अन्तर समझाती है ? छोटे-बड़े का विभाजन करती है ? समुचित उपयोग के नाम पर दाँत से चीजें पकड़ने का स्वांग सिखलाती है ?

जो भी हो, अभी तो मेरा मस्तिष्क आन्दोलित ही हो गया है। मैं उमाकान्त के आगे जैसे पराजित-सा हूँ !

काली चिड़िया के डैने

सुबह होते ही,
अधखुली खिड़कियों की राह से,
सुनहली किरणें—
कतार बाँधे दौड़ी आती हैं।
छूने लगती हैं कमरे की दीवारों को ;
जहाँ से उठते हुए धूलों के टुकड़े,
किरणों की सीढ़ियाँ चढ़,
उपक्रम करते हैं सूरज तक जाने का !

गिलहरियों के पैरों की ध्वनियाँ—
छत से लग कर गूँज-गूँज जाती हैं,
गौरैया पंछी की आवाजें,
कानों से रुक-रुक कर टकराती हैं ;
थकी-थकी लगती-सी हवाएँ,
किवाड़ों के बेरहमी धक्के ही खाती हैं।

खपड़ैले कमरे की जुड़ी दीवारों पर—
टँगे हुए घोसलों में,
काली चिड़िया के डैने,
लगते हैं काँपने।
अपने अन्तरंगों में छिपे हुए,
शिशुओं को लगते हैं ढाँपने।

मेरा मन खुद से ही कहता है—
प्यार के कोई स्वर नहीं होते,
स्वर के सुरीले ताल नहीं होते ;
आकृतियाँ भी नहीं होतीं !

जो कुछ है वह सत्य नहीं :
इसीलिए सत्य का होना हो,
नहीं होता !

हस्त-सेतु

चाय की मेज पर,
हम रोज मिलते हैं,
हाथ मिला कर
देते हैं बधाई एक दूसरे को।
बाँटते हैं,
अपनी परछाईं एक दूसरे को।

मगर यह मेज प्रतिदिन हमसे कुछ कहती है,
एक वही तो हमारा दर्द सहती है।
हम जो धन्यवाद के हाथ मिलाते हैं,
हम जो अपनी समीपता का सेतु बनाते हैं,
उसके नीचे ही एक गहरा सागर लहराता है।

हम जो अपने सागर के ऊपर,
हस्त-सेतु बनाते हैं—स्वयं के लिए नहीं,
अभी कितने ही प्रयाण-यात्री आएँगे,
और अपनी अपरिमिता आस्थाएँ चढ़ाएँगे,
हमारे इस हस्त-सेतु की इषणया पर।

आत्म-बंधन

हमारे शब्दों को बूढ़े बादल ग्रसते रहे,
किन्तु हमने अपने राग खुल कर गाए हैं।

हमारे बीच चाहे जितनी भी दीवारें हों,
हम एक ही मिट्टी पर रहते आए हैं।

दूर दूर ही सही,
हम एक ही स्रोत में आदि से बहते आए हैं।

अप्रत्यक्ष ही सही,
हम एक ही पीर को मन ही मन सहते आए हैं।

ऐसे में कब, कोई, कैसे कहेगा—
हम अपने नहीं, पराए हैं?

काँच का पिंजड़ा

उस पार तुम खड़ी हो।
चाँद का हिरण,
धानी खेतों में उतर आया है।
और इस पार मैं तुम्हें सीप की बूँदों से–
भिगोना चाहता हूँ,
मगर तुम नहीं भींगती।
तुम्हें बाहुओं के गजरे में,

पिरोना चाहता हूँ,
मगर ये हाथ तुम तक जाते ही नहीं।
हमारे बीच खड़ी है—
यह काँच की पारदर्शी दीवार।

तुम मुझे देखती हो,
और मैं तुम्हें देखता हूँ।
तुम्हारी आँखें स्थिर हैं,
मेरे हाथ पथरा गए हैं।

मेरे हाथों में
केवल तुम निखरी हो,
तुम्हारी आँखों में केवल
मैं बिखरा हूँ।

ये आँखें और ये हाथ,
सब के सब काँच के रोगी हो गए हैं;
और हमारे सामने पड़ा है—
यह काँच का हिम-शिशु-सा पिंजड़ा।

दुपहरिया

अहाते के फूलों में
कोई सिहरन भी नहीं भरता,
धूलों से दबी घास
बुढ़ापे के सपने में चुप बैठी है।

चिड़ियों के खोंते,
अनार की डालों से उजड़ गए हैं।
दो-चार तिनके बिखर कर टूट गए हैं।
पीपल के पत्ते अब नहीं झरते,
आई है कोई मनहूस दुपहरिया
विदा होती दुल्हन की सिसकियाँ लेकर।
अभी-अभी शकुन्तला आश्रम से गई है!

दुपहरिया लगती है
जैसे काली उराँव बाला ने
अपनी हथेली हल्दी से रँग ली हो।
मन्दिर के साँवले शंकर
कनइल के पीले फूलों में डूब गए हों।
'रसोई-घर' की छत चूने के बजाय
रामरस से पुत गई हो।
और प्रेस से छपकर निकला हुआ
'विविधा' के पहले अंक का 'कवर'
अभी गीला-गीला हो।

अयाचित मेघ

यह अयाचित मेघ क्या होंगे?
हवा के पाँव पर
जो सुगबुगाते,
फूल जाते
और भरते दम्भ झूठे, गर्जना के!

स्वयं के व्यक्तित्व से ऊबे हुए,
बड़वाग्नि के परिताप में डूबे हुए,
यह पराश्रित मेघ
देंगे ही भला क्या ?

झुंड बाँधे घेर लेंगे,
निविड़ जीवन से भरे
श्रद्धांजलि के दीप को।
दो पल चमक कर झर पड़ेंगे !
चीख जाएगी अकेली
स्नेह की कम्पित शिखा।
तब,
तमिस्रा की गुहा से फूट कर
बहती हुई ध्वनि-मूर्च्छना,
ढाँक लेगी रन्ध्र को,
अनुयोग को !

चाँद के मोती चुरा कर,
घाटियों में,
तलहटी की सरणियों में,
कालिमा का विष भरेंगे !
सरित के क्रोड़ को गँदला करेंगे !

यह अयाचित मेघ,
देंगे भी अगर तो
दाह की कुछ चिनगियाँ ही।

व्यथा देंगे बाँसुरी को,
वल्लरी को, पाँखुरी को।

खींच देंगे,
समतली की आकृति पर
क्रूरता की रेख टेढ़ी!
पर्वतों के अंचलों में,
वक्रता पर ऐंठती-सी
मृग-तृषा की धार को,
क्षण भर बहाएँगे।
प्रस्तरों से हार कर,
कण रेत को ही तो ढहाएँगे!

माना प्यास अन्तर में
जगाकर चातकी के,
दो बूँद जल-कण बाँट देंगे।
किन्तु इतनी-सी मया पर
यह बृहद् विस्तार क्यों?
यह कलुष आकार क्यों?

यह अपूरित मेघ,
देंगे भी अगर तो
अपना भला क्या?
सिन्धु से माँगे हुए
अनुदान ही तो दे सकेंगे!

इनका विमत्सर,
छूट जाने के लिए है ।
इनका समर्पण,
टूट जाने के लिए है ।
यह नहीं आदेय
अपने दर्प के !

चार जोड़े पाँव

चाँदनी की पहली घड़ी में,
किसी दिन
स्वागत में आई थी हवा
ओस-बूँदों का गुच्छा लिए,
छितराए थे गुलाब के फूल,
उमगीं थीं जूही की टहनियाँ,
लहरों पर
शहतूत की डालें लहराई थीं ।
धान की बालियाँ
कहीं से बह आई थीं ।

पानी के बाहर और भीतर,
यहीं कभी खिले थे—
चार जोड़े पाँव !

पाँवों के वे नीले-पीले फूल
थे केवल मेरे,
तुम्हारे और हमारी छायाओं के ।

धरोहर थे जो कूल और धाराओं के।
ऐसी कोई विवशता नहीं
कि वे सपने थे।
सब आत्मज थे, अपने थे।

किसी दिन,
पानी की लहर आई
और वहा ले गई उन फूलों को
छोड़ने के लिए कहीं सागर की तली में।

अब भी उनकी स्मृतियाँ
फैली—हैं टहनियों पर,
पुरवैया मनाती है वर्षगाँठें उनकी,
उनके सुगन्ध से भींगी हैं
पानी की हर ध्वनियाँ।
गुम सुम सोचती है रेती
"क्या राज था उनका ?"

शैशवगृह

पीपे का औंधा पानी,
पेट भर घड़े का,
पथ की नालियों में
रेंगता-सा बह गया।

रूप डूबे,
शब्द के सम्मोह टूटे,
मन का रिक्त शैशवगृह
कभी का ढह गया।

उक्ति

झुका झुका चाँद
आँखों को लगा बाँधने।
पछैया ने कहा-"मजनू!
हुई घड़ी भोर की।"

शेमुषी

देखो!
आसक्ति की लहरियों पर
समर्पण के दंश
उपजे, डूबे
और उतराते चले गए!

लो, कहीं से,
वक्र-मंथन के लिए
लुढ़कते-पिचकते,
सेवार के बोझे उठाते,
कूबड़ी-सी शेमुषी भी आ गई!

द्वितीय खण्ड

तीन कहानियाँ

एक बड़े घर की कहानी : नीम, जूही और टामी की पूँछ

एक छोटे घर की कहानी : बहेंगवा

एक न बड़े, न छोटे घर की कहानी : साँझ ही सो गए

नीम, जूही और टामी की पूँछ

मिसेज नीली, डाक्टर्स कॉलोनी के सबसे बड़े पाँच तल्लों वाले अपने मकान 'कल्याणपुर हाउस' के अहाते में, अक्सर नीम की छाया के नीचे आर्म्सचेयर पर बैठी दीख जाती हैं। उस समय उनके हाथों में कोई किताब होती है या स्वेटर बुननेवाली छड़ियाँ या कभी-कभी जूही के दस-पाँच फूल भी देखने को मिल जाते हैं। समूचे अहाते में कभी तो फूल ही फूल दीखते हैं, कभी बिलकुल सपाट मैदान उभरा हुआ दिखाई दे जाता है और कभी-कभी ज्वार बाजरे के पौधे भी लहराते मिल जाते हैं। गोया अहाते की हर घास, हर पौध, हर फूल परिवर्तनशील है लेकिन नीम का पेड़ और उसकी बगल में उगी हुई जूही की पौध कभी नहीं बदलती शायद वह नीम और वह जूही नीली को बहुत प्यारी हैं। नीली का एक प्यारा और भी है वह उस घर का छोटा-सा टेढ़ी पूँछ वाला झबरा कुत्ता-टामी। नीली जब आर्म्सचेयर पर लेटी किताब पढ़ा करती है अथवा हाथ की छड़ियाँ नचाती है, टामी उसके इर्द-गिर्द अपनी पूँछ उठाए घूमा करता है और स्वामि-भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन तीनों की निगरानी का भार स्वयं नीली के ऊपर है। माली को घर की मालकिन का पूरा-पूरा खयाल रखना पड़ता है। रोज नीम के तने पर नजर दौड़ाई जाती है, जूही की क्यारी शीतल जल से सींची जाती है और टामी तो वह सब कुछ पाता है जो घर के एक आवश्यक आदमी को मिलना चाहिए।

नीली का व्यक्तित्व कुछ अजीब-सा बनता जा रहा है। वह शान्ति और एकाकीपन अधिक पसन्द करने लगी है। एक साल पहले शादी के पूर्व वह कुछ और थी। सभा-सोसायटी, चहल-पहल, घूमना-मचलना,

सैर-सपाटे सब कुछ जैसे वह पीहर ही भूल आई है। अब उसे यह सब अच्छा नहीं लगता है। वह महसूस करती है 'कल्याणपुर हाउस' की हवा बड़ी उन्मुक्त है। सारा वातावरण इतना खुला-खुला-सा है जो अपने बीच रहनेवालों को क्षण भर सोचने के लिए लाचार बना देता है। कोई अड़चन नहीं, बाधा नहीं! हर क्षण फ्री! बहुत खुला-खुला-सा चौराहा लगातार चलनेवाले राही के कदमों को रोक लेता है।

'कल्याणपुर हाउस' की सुबह नीली को बहुत सुहावनी लगती है। भींगी-भींगी खुशबू से भरी हुई। उसके दिल में एक हल्की-हल्की सिहरन जगा देती है। उसी दिल के किसी कोने में कोई मीठा-मीठा दर्द अंगड़ाइयाँ लेते हुए जागने लगता है। एक नशा-सा उसके ऊपर छाने लगता है। उसकी रगों में जैसे यह नशा स्फूर्ति और ताजगी भरने लगता है। डॉ० दर्शन सात बजे सुबह डिस्पेन्सरी चले जाते हैं। उनके लिए चाय और नाश्ते का प्रबन्ध वह खुद अपने हाथों से करने लगती है। किस रोज डाक्टर दर्शन किस तरह की चाय पीते हैं, किस रोज उन्हें काफी के प्यालों का कौन-सा रंग अच्छा लगता है? यह समझने की वह खूब कोशिश करती है। यह सब उसके सिवा किसी दूसरे के लिए समझना संभव भी नहीं है। डॉ० दर्शन की हर पसन्द का अध्ययन वह कर चुकी है। इधर हफ्ते के दिन बदलते हैं, उधर उनके अनुकूल ही ड्रेसिंग टेबुल के क्लाथ, ड्राइंग रूम के सोफे, चश्मे की फ्रेम, टाई की आकृतियाँ, जैसे हर चीज बदलने का जिम्मा नीली के कन्धों पर है। यह जिम्मेवारी कुछ ऐसी है जिसे जानने की इच्छा खुद डाक्टर दर्शन नहीं करते। वे जानते हैं कि नीली उनका बेहद खयाल करती है। वे जानते हैं कि वह एक आर्टिस्ट है और हर चीज को आर्ट के तरीके से करती है। उनका दिमाग केवल तारीफ करना जानता है। उनका दिल केवल आनन्द की लहरियों में तैरना चाहता है। उनकी आँखें केवल नीली की सजाई गई चीजों पर मुग्धा की तरह भटकती रहती हैं और वे सोचते हैं यह सब उनके बड़े भाग्य की बदौलत है। नीली डाक्टर के इन अनुभवों को खूब समझती

है। एक भोले-भाले शिशु की मोहित होनेवाली स्थिति को वह डाक्टर की हर हरकत में सुबह के समय देखती है। डाक्टर के हर भाव दर्पण की तरह उसके सामने चमक उठते हैं जिसमें वह अपना बिम्ब झलकते हुए देखती है और शिशु की तरह मचलते हुए डाक्टर जब नाश्ते के बाद डिस्पेन्सरी की ओर रवाना हो जाते हैं तब जैसे उसके कानों में कुछ-देर के लिए वे सारी आवाजें गूँज उठती हैं जो कुछ देर कबल 'कल्याणपुर हाउस' की दीवारों से टकराई थीं।

डाक्टर के चले जाने के बाद एक खामोशी-सी छाने लगती है। बाहर की सीढ़ियों से निकल कर यह खामोशी धीरे-धीरे घर के हर कोने में पैठने लगती है और अजगर को कुण्डलियों की तरह समूचे घर को वह अपने दायरे में समेटना आरम्भ कर देती है। नीली इस छाया को टालना चाहती है। इससे दूर हट जाना चाहती है। पहले किचेन की ओर चली जाती है। बावर्ची को डाक्टर को पसन्द बतलाने लगती है। बावर्ची मालकिन की रुचियों को जानता है। वे सारी कामयाब होती हैं। कोई बेमतलब नहीं। मालकिन की सोचती हुई आकृति को वह खूब गौर से देखता है। नीली उसे रसोई की फरमायश रुक-रुक कर बतलाती जाती है। सुबह की घड़ियाँ धीरे-धीरे ढलाव की ओर ढुलकती जाती हैं। किचेन की व्यवस्था आसान नहीं होती है। बावर्ची चाहे लाख अच्छा हो लेकिन अच्छे सामान फरमायश के मुताबिक ही बनाए जा सकते हैं। नीली डाक्टर की सेहत पर रोज नजर रखती है।

किचेन का काम खत्म हो जाता है और खामोशी की छाया घर के एक अंग को पूरे तरीके से ढॉक लेती है। नीली ऊपर के तल्ले की सीढ़ियों पर चढ़ने लगती है। साथ नौकर भी आ जाता है। यों घर में लिफ्ट लगी है, मगर वह उसका इस्तेमाल नहीं करती। पहले तल्ले के कमरों की देख-भाल कर वह दूसरे तल्ले के कमरों को सजाने का तरीका नौकर को समझा देती है। शाम तक इन कमरों की सजावट भी बदल जानी चाहिए। हफ्ते में एक बार सभी कमरों की सजावट बदलती रहती है। ऊपर के

आखिरी तल्ले तक जाते-जाते खामोशी की छाया घर के चौथाई भाग को ग्रस लेती है। नीली के दिल में जागता हुआ दर्द करवटें लेने लगता है। नीली इससे छुटकारा पाना चाहती है किन्तु इसके लिए वह घर को नहीं तोड़ सकती। यह छाया उसे प्यारी न भी हो, मगर घर प्यारा है। इसीलिए वह इसके इन्तेजाम को अपने रास्ते पर खींचे ले चलती हैं।

कमरों की सजावट का तरीका समझा कर वह स्नान के लिए बाथ रूम में जब जाती है, उसके दिमाग में कुछ घूमता है जिसे जान कर भी वह भुला देना चाहती है। यह घूमने वाला पहिया उसके दिमाग से नहीं हटता। पानी की फुहारें बार-बार हल्के-हल्के गिर कर भी उसे नहीं हटा पातीं। फुहारें न तो उसे हटा पाती हैं और न मिट्टी की तरह उसे घुला ही पाती हैं। बालों के अंग्रेजी तेल और पाउडर उस पहिए को जैसे और भी भारी बना डालते हैं। यह पहिया कंघी के छू जाने से और भी तेजी से घूमने लगता है। नीली जानती है यह घूमता हुआ चक्र उसके सारे शरीर में कनकनाहट भरता जाता है। सुबह की घड़ियाँ साथ-ही-साथ आगे बढ़ती हैं। घड़ी की सूई भी वैसे ही नाचती जाती है। नीली का मन घबराता नहीं, कुछ सोच में डूबने-उतराने का क्रम जारी रखता है। आसमान में सूरज करीब-करीब सिर के ऊपर आने लगता है। ताप बढ़ जाता है और सुबह की सीमा शायद यहीं खत्म हो जाती है।

दोपहर में खामोशी के साथ-साथ उदासी का रंग भी छाने लग जाता है। घर के सारे काम-काज जैसे समाप्त हो जाते हैं। खाने के सामान रिफ्रेजिरेटर में रखे जाते हैं। कमरों की सजावट की आवाजें नीली के कानों में जरूर सुनाई पड़ती हैं। खट्-खट्, चीं-चीं की आवाजें। नीली चुपचाप सोचती है। अपने कमरे के बिस्तर पर जाकर लेट जाती है और किसी उपन्यास के पन्ने उलटने लगती है। उपन्यास के पन्नों पर उसका जी नहीं लगता। एक मासूम बेचैनी से मन खीझ उठता है। पंक्तियों को पढ़ते-पढ़ते किसी दूर के सपनों को पास बुला लेती है और उनके बीच

पल भर खो जाती है। तन्द्रा भंग होने पर उसे झिझक होती है। अपने आप पर एक गहरी खीझ जाग उठती है। क्यों? बेकार की सोच में वह क्यों डूबी जाती है? 'कल्याणपुर हाउस' में मन बहलाने के लिए क्या नहीं है? वह उठती है। बगल के ड्राइंग रूम में पहुँच कर रेडियो की बत्ती जला देती है। मीठे-मीठे गानों के रिकार्ड बज उठते हैं। वह सोफे का सहारा लेकर गिर जाती है। रेडियो के गीत बजते हैं-खत्म होते हैं और फिर बज उठते हैं। डाक्टर दर्शन खाने के लिए हास्पिटल से चले आते हैं। डाक्टर दर्शन कल्याणपुर राजा के इकलौते लड़के हैं। बिलायत में पूरे बारह साल डाक्टरी की पढ़ाई पढ़ चुके हैं। पटने में उनकी सबसे अधिक प्रैक्टिस चलती है। बड़े अस्पताल के अडिसनल चीफ भी हैं। चौसठ रूपए फीस होने पर भी उनकी डिस्पेन्सरी कभी मरीजों से खाली नहीं होती, खाली करवाई जाती है। हास्पिटल उनकी डिस्पेन्सरी के पास ही है। इसीलिए सुबह-शाम के बीच का समय हास्पिटल में बिताना उनके लिए कोई आसान है। आफिस ड्यूटी जब कड़ी होती है तब उनका खाना हास्पिटल ही भेजा जाता है। रिफ्रेजिरेटर से खाना निकलवाने में कुछ समय निकल जाता है। वैसे डाक्टर के आने पर कुछ समय और कट जाता लेकिन दोपहर का समय बड़ा लम्बा-सा होता है। सूना-सूना-सा होता है। यह सब हो जाने पर भी रेडियो की आवाज चलती रहती है। लेकिन नीली का मन इससे भी ऊब जाता है। रेडियो के इन फिल्मी गानों में उसे कला की सूरत नहीं झलक पाती। स्वरों का बेरहमी से तोड़ना-मरोड़ना वह नहीं चाहती। पक्के गानों से उसे कुछ राहत मिलती है लेकिन कानों में गूँजने वाले स्वर दिल पर नहीं जमते; या कभी जम भी पाते हैं तो वैसे ही जैसे काले रंग की परत पर कोई लाल या नीला धब्बा। उनका जमना फीका-फीका-सा लगता है। वह रेडियो बन्द कर देती है। कमरे में दो-एक बार चहलकदमी करती है। बाहर आकर सीढ़ियों के पास से, सामने अहाते के पार दूर से जाती हुई सड़क की ओर देखती है। तबीयत होती है कहीं पास-पड़ोस से घूम आए।

लेकिन उसके पड़ोस के लोग आदमी नहीं मशीन हैं। पड़ोस की औरतें ऊँचे घर से आते हुए भी पढ़ी-लिखी नहीं। खोजने पर कहीं कोई पढ़ी-लिखी औरत मिल जाती है तो उसके सोचने-समझने के तरीके से मन में उदासी घिर आती है। दिल की ढहती हुई मीनारों पर गहरा धक्का-सा लग जाता है। उस औरत की पढ़ाई केवल 'पेइङ्ग' चीजों को जानती है, 'प्लेजेन्ट' या कला से उसका कोई मतलब नहीं। जो 'पेइङ्ग' है वही कीमती है और जो 'प्लेजेन्ट' है, उसमें कीमत की गुंजाइश नहीं भी होती। नीली 'प्लेजेन्ट' चीजों को चाहती है। पड़ोस कुछ वैसा है जिसमें सुगन्ध नहीं, एक गर्म आँच है। नीली के लिए पड़ोस बालू का द्वीप है जहाँ कोई अपनी प्यास नहीं बुझा सकता वरन् अपने मकानों के लिए ढेरों बालू वहाँ से उठा ला सकता है। नीली के पास बालू का भण्डार है उसे तो केवल प्यास बुझाने के लिए पानी की बूँदें चाहिए। पड़ोस वही है जिसे वह रोज देखती है। वह 'कल्याणपुर हाउस' का ही एक छोटा-सा माडेल है। इसलिए वह उसे नहीं चाहती। उसे तो वह चाहिए जिसे वह अपने घर नहीं पाती और शायद पड़ोस से भी नहीं पा सकती।

नीली की मनोव्यथा बढ़ती जाती है। दोपहर की धूप तेज हो उठती है। एक सूखी-सूखी-सी हवा शरीर के ताप को गहरा कर जाती है। झरते हुए नीम के पत्ते मन के सपनों जैसे लगते हैं। घर की खिड़कियाँ चाह के झरोखों-सी धुँधली बन जाती हैं। एक अनजानी वाणी गले में आकर अटक जाती है और नीली की नसों में तनाव छा जाता है। माथे पर पसीने की दो-चार हल्की लकीरें खिंच जाती हैं। नीली जानती है इन लकीरों में स्थायित्व नहीं। यह बर्फीली नदियों की तरह उभरती हैं और बहकर साफ हो जाती हैं। इसलिए वह इन्हें देखकर, समझकर, अनुभव करते हुए भी अपनी सीमा नहीं तोड़ती। उसकी सीमा उसे प्रिय है। उसका घेरा उसका अपना है। वह घबड़ाती नहीं। कुछ बेचैनी जरूर महसूस करती है लेकिन संतुलन नहीं छोड़ पाती।

कभी सितार के तारों पर उंगलियाँ रख देती है। कण्ठ से एक अलाप

बिखरा कर कमरे में गूँज भरना चाहती है। अलाप उठता भी है, मगर न जाने क्यों अधूरा ही होकर खत्म हो जाता है। कण्ठ का विस्तार धीरे-धीरे रुक जाता है। वह गाकर भी गा नहीं पाती। गाने में पूरा मन नहीं लगता। वह सितार छोड़ कर उठ जाती है। घर के नौकरों को पुकार लेती है। बावर्ची को चूल्हे जलाने के लिए कह जाती है। साँझ आ रही है। नीली चाहती है घर का प्रबन्ध ढीला न पड़े। कहीं कोई आलस न आ जाए। कहीं देर न हो जाए। समय गलत न बन जाए। साँझ को डाक्टर दर्शन घर नहीं आते। घर से नाश्ते के सामान डिस्पेन्सरी भेजे जाते हैं। नीली दोपहर के अन्त से ही यह सब समझने लगती है। दोपहर फूटे हुए घड़े के जल के समान चू जाता है और काल की कीचड़ भरी गलियों में सूखता-सूखता-सा रह जाता है।

साँझ आते-ही-आते 'कल्याणपुर हाउस' की छाया उदासी के साथ-साथ बिलकुल काली होती जाती है। कुहासे के बाद एक काला अन्धकार छाने लगता है। नीली डाक्टर के लिए नाश्ते के समान भिजवाने में लग जाती है। ऐसे-वैसे के तरीके समझाने में समय का एक अंश कट जाता है। लेकिन साँझ की काली खाइयों में जब सितारों के आने की ध्वनियाँ छटपटाने लगती हैं, तब नीली की सीमा पर एक गहरी चोट लग जाती है। उसकी सीमा का एक अंश टूटता नहीं, लेकिन चटक जाता है। उसमें कहीं कोई छोटी-सी दरार उगने लगती है। वह घर से बाहर निकलकर अहाते में टहलने लगती है। सामने दूर की सड़क पर कुछ चहलकदमी बढ़ जाती है। आसमान में काली छाया का रंग पुतने लगता है। सूरज की किरणें पीले रोगियों की तरह कुम्हलाती हुई मृत्यु की गोद में सोने लगती हैं। नीली टहलना बन्द कर देती है और नीम के नीचे आर्म्सचेयर रखवा कर बैठ जाती है। बगल की जूही से दो फूल तोड़ लेती है और चेयर का पूरा सहारा लेकर मन-ही-मन कोई अनजानी-सी गाँठ खोलने लगती है। घर का बँधा टामी खोल दिया जाता है और वह नीली के इर्द-गिर्द पूँछ उठाए चक्कर लगाना आरम्भ कर देता है।

साँझ की काली छाया, जब 'कल्याणपुर हाउस' की गहरी छाया और उदासी के साथ मिलकर नीम की छोटी-सी छाया को ग्रस लेती है, तब नीली का मन न जाने कैसा करने लगता है ? एक गहरा धक्का उसके दिल की परत से टकरा आता है। क्षण भर वह अपने को अन्धकार की गुफा में बन्द-सा पाती है, जहाँ से बाहर निकलने की कोई राह नहीं। उसका सन्नाटे से घिरा मन पंखहीन चिड़ियों की तरह फड़फड़ाने लग जाता है। लगता है जैसे बहुत दिनों से जमाई हुई धैर्य की नींव हिल जाएगी। मगर यह सब कुछ एक भूकम्प के धक्के-सा क्षणिक होता है। नीली इस धक्के से टूटती नहीं, लेकिन दुर्बल हो जाती है। उसके लिए अब विश्राम की जरूरत होती है और वह नीम के नीचे से उठकर घर के अन्दर चली जाती है। एक प्याली चाय की आवाज देकर अपने कमरे के बिस्तर पर गिर जाती है। सिर में कोई पैनी चीज घुस जाती है। वह अनुभव करती है जैसे वह बीमार है। लेकिन जीवन में बीमारी तो होती ही है। इसके चलते कोई जीवन से ही भागे क्यों ? उससे ही घृणा करे क्यों ? जिन्दगी में भूचाल और रोग आते ही हैं।

वह बिस्तर पर लेटे-लेटे सोचती है। एक वर्ष के वैवाहिक जीवन में वह जितना चाहती उससे अधिक कर सकती थी। वह कुछ उदासीन है, उदार नहीं। उदारता, उदासीनता नहीं कही जा सकती। और इन दो शब्दों के अन्तर को वह गम्भीरता से समझने लगती। डाक्टर दर्शन को वह कला और 'इंजेन्ट' की ओर ज्यादा खींच सकती। एक साल का समय कम नहीं होता। वह सोचती है उससे कहीं कोई भूल हो गई है। कहीं कुछ भ्रम हो गया है। एक गहरी उसाँस में वह सबका समाधान निकाल लेना चाहती है। डाक्टर का दिल कला के उपयुक्त है। उसमें गीले-गीले तार हैं। पिघली-पिघली-सी डोरियाँ हैं और सब कुछ है जिसका समुचित उपयोग वह आइन्दे करेगी। दिल का सूजा हुआ दर्द एक नई आशा का संचार करता है। ठोकरों का घेरा आदमी को चौकन्ना कर देता है। नीली सोचती है। फिर अपनी ही बातों के अधूरे जाल में उलझ जाती है।

रात की गहराई जब जोरों से बढ़ने लगती है, खिड़की की राह से सामने दीखती हुई सड़क सन्नाटे के गम में डूब जाती है। भूला भटका कोई सड़क की रोशनी में किसी की आहट की आशा में ठिठक कर खड़ा हो जाता है। तब डाक्टर दर्शन की कार 'कल्याणपुर हाउस' की फैली हुई खामोशी को चीरती हुई पोर्टिको में आ लगती है। ऊपर के तल्ले पर लगी हुई घड़ी टावर से दस के घंटे बजा उठती है और नीली के अस्तित्व पर घिरने वाली काली चादर खिंच कर एक ओर हट जाती है। वह जल्दी-जल्दी उठकर डाक्टर का स्वागत करती है। उनके कपड़ों को एक-एक कर उतारने लगती है। कमरे तक आते-आते डाक्टर बाथरूम की तैयारी करने लग जाते हैं। एक बार घर का सूना-सूना-सा लगने वाला मौसम झंकृत हो उठता है।

कमरे में फैली हुई बिजली की दूधिया रोशनी में बिस्तर पर लेटने का उपक्रम करते हुए डाक्टर नीली के गुमसुम से लगने वाले चेहरे की ओर एक टक देखकर कहते हैं :—"आज बहुत ही मुश्किल आपरेशन करना पड़ा। अगर जरा-सी चूक हो जाती तो बिचारे की समूची आँख चली जाती। कोई चार घंटे लग गए।" नीली कोई उत्तर नहीं देती। वह खामोश-सी डाक्टर की बगल में चुपचाप बैठी रहती है। डाक्टर नीली की आँखों में कुछ खोजना चाहते हैं फिर प्यार की भाषा में कहते हैं :—"आँखों की पुतलियाँ बड़ी बारीक होती हैं। इन्हें सम्हालने में काफी वक्त जाया करता है।" नीली चुप रहती है। डाक्टर पूछते हैं :—"आज कुछ चुप-सी लगती हो नीली! चलो कल तुम्हें अस्पताल के कुछ नजारे दिखलाऊँ। कैसी-कैसी बीमारियाँ होती हैं, लोगों को।" नीली कुछ ऊब-ऊब-सी जाती है। कहती है :—"हटाओ अस्पताल की बातें। कुछ प्यार की बातें करो।" डाक्टर कुछ चौंक उठते हैं :—"प्यार की बातें। वह तो तुम्हीं शुरू कर सकती हो। मैं कला की पढ़ाई नहीं कर सका। प्यार की बात कोई कलाकार ही कर सकता है।" डाक्टर के शब्दों में हँसी के साथ-साथ जैसे एक बेबसी झलकती है। एक निरीह व्यक्ति की तरह उनकी

आँखें नाचने लगती हैं। वह एक क्षण को सोचकर फिर बोल उठते हैं :—
"नरगिस की अदाएँ मुझे बेहद पसन्द हैं। वैजयन्तीमाला के नखरे खोटे मालूम होते हैं। मीना कुमारी की एक नई फिल्म आ रही है। दिल्ली में इसकी बड़ी धूम है। हिन्दुस्तान टाइम्स में पूरे पेज का इश्तेहार छपा है।" डाक्टर अभी न जाने क्या-क्या बोलते हैं तभी नीली जोरों से खिलखिला कर हँस पड़ती है। वह थोड़ी देर लगातार हँसती रहती है। डाक्टर भी हँसने लगते हैं और जब हँसी की कड़ी टूटती है तब वे नीली से पूछने लगते हैं :—"तुम हँसती क्यों हो?" "नीली बोलती है :—
"तुम्हें प्यार की बातें भी नहीं आतीं। लिटरेचर नहीं पढ़े इसी वजह से" डाक्टर बोलते हैं।—" तुम्हारी तरह वह पढ़ता तो शायद डाक्टर होने की जगह किसी कालेज का प्रोफेसर होता।" नीली को रह रह कर हँसी आती है। हँसी रोकते हुए कहती है :—"धीरे-धीरे सीख लो। मैं तुम्हें सब कुछ सिखला दूँगी।" नीली के प्यार से पुलकित होते हुए डाक्टर निवेदन करते हैं :—"नीली एक गीत सुनाओ। बहुत थक गया हूँ।" नीली पूछती है :—"इस समय क्या पसन्द करोगे? कोई उस्तादी या भजन?" डाक्टर कहते हैं :—"उस्तादी और भजन-वजन छोड़ो। इस समय कोई फिल्मी सुनाओ।"

नीली कुछ गुमसुम-सी हो जाती है। फिर हारमोनियम लाकर गाने लगती है :—"मेरा मन डोले, मेरा तन डोले, कौन बजावे बाँसुरिया?" अभी आधा गीत भी समाप्त नहीं होता है कि डाक्टर दर्शन जोरों से खर्राटे भरने लगते हैं। नीली गाते-गाते मौन हो जाती है। उसका गीत हारमोनियम की छोटी-छोटी दरारों में पैठकर विलीन हो जाता है।

सोते हुए डाक्टर की ओर नीली जी भर कर देखती है। एक उदासी की लहर उसके मन में अब भी दौड़ जाती है। डाक्टर के दिन भर की थकान को वह मन-ही-मन अनुभव करने लगती है। मासूम बच्चे की तरह उनका चेहरा उसके सामने खिलने लगता है। शिथिल पड़े डाक्टर के चेहरे पर उसकी आँखें गड़ी रहती हैं। कुछ देर बाद उसे अपनी अवस्था का बोध

होता है, तब वह बिस्तर पर किनारे पड़ी रेशमी चादर से डाक्टर का शरीर ढँक देती है और स्वयं अपने कमरे के बिस्तर पर धीरे-धीरे चाय के उफनते हुए पानी की तरह ऐंठती हुई लुढ़क जाती है। खिड़की की राह से अहाते की नीम, जूही की पौध और टामी की पूँछ दिखाई देने लगती हैं। फिर उसका शरीर जैसे अजगर की कुण्डलियों में किसी अज्ञात मणि की लालच से दब जाता है, तभी नींद का गरुड़ उसे उसके अजगर के साथ अपने पेट में निगल जाता है। गरुड़ का पेट, काला, अथाह, अनुभवहीन और रत्न-मणियों से भरा है।

साँझ ही सो गए

मुहल्ले में लाला बड़े इन्तेजामकार गिने जाते थे। अपनी गृहस्थी में उनके जैसा निपुण कोई घर वाली भी नहीं होगी। बाजार-हाट से लेकर रसोई-पानी तक के जानकार, पुरखा-पुरनइयाँ। दफ्तर में मिस्टर बनवारी लाल। काम में बिलकुल मुस्तैद। आफिसरों के आगे वैसी सलूट मारते जो क्या कोई मिलीटरीमैन मारेगा? पाँच बजे दफ्तर बन्द हो जाता मगर अपने काम पर लाला साढ़े छ-सात तक रोज जमे रहते। सारी फाइलें दस्तखत करके फेंक लेते तब ही घर लौटते। दफ्तर में कभी एक प्याली चाय तक नहीं छूते और सबसे दो-एक घंटे अधिक ही काम करते। लाला के विषय में बड़ी-बड़ी किंबदन्तियाँ प्रचलित हो गई थीं। "कंजूस है।" "घर में बरकत नहीं है।" "बड़े इन्तेजामकार हैं मगर आमद नहीं।" "बड़ा भला है, कभी किसी से लड़ा तक नहीं"-आदि-आदि। इनसे किसी निष्कर्ष पर आना कठिन है। लाला क्या थे—यह यदि कोई उनके यहाँ एक साँझ की बात सुन ले तभी पता लगा सकता था। प्रायः प्रतिदिन साँझ के समय लाला के घर एक ही विषय की बात होती। यह पास-पड़ोस में सभी को नहीं मालूम था किन्तु जो उनके घर से सटे रहते थे वे जरूर जानते थे—लाला क्या हैं? वैसे अधिकांशतः लोगों के लिए वे रहस्य ही थे। लाला के घर केवल तीन ही प्राणी थे। खुद, पत्नी और एक दस बर्ष का लड़का जित्तू।

लाला दफ्तर से आते ही कहते :—"जित्तू की माँ! चना भी क्या अनाज है? जैसे फूलों का राजा गुलाब, वैसे ही अन्न का राजा चना!

एक चना घर में भर दो, फिर खाओ न, भात, दाल, चोखा, रस्सेदार तरकारी, भुँजिया, चटनी, घुघनी, बड़ी, फुलौड़ी, रोटी, हलुआ, पापड़, सत्तू, भूँजा, क्या नहीं? चने की कौन-सी चीज नहीं होती?"

"उधर जित्तू की माँ कहती :—"खाओ न, आज तो खूब बनाया है, चने की रोटी भी है और दाल भी। तरकारी नहीं बना सकी हूँ। जो कहोगे-वही बना देती हूँ—भुँजिया, पापड़, हलुआ.......।"

लाला मुँह बनाकर कहते—"तुम भी क्या कह रही हो जित्तू की माँ। रोटी, दाल तो हो ही गई अब क्या चाहिए? पापड़ तो मेहमानों के लिए बनता है, मैं कोई मेहमान हूँ। हलुआ तो बच्चे खाते हैं—मुझे तो अच्छा ही नहीं लगता। भुँजिया तो बारात में चलती है, यहाँ क्या कोई जित्तू की शादी होनेवाली है? चूल्हा बुझा दो! बेकार की लकड़ी जला रही हो। इतना बन गया तभी संतोष नहीं। अरे संतोष सीखो—संतोष! हमारे संतों ने कहा है जित्तू की माँ.......'जो आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान!' संतोष ही परम धन होता है। और तुम तो नारी हो नारी! लक्ष्मी! आराम से बैठो।"

लाला की जुबान जब बेतरह भागती जाती तो जित्तू की माँ वश के बाहर हो जाती। लोटे का पानी चूल्हे पर डाल तुरत कह उठती :— "लो, न! जब न मानूँ तब तो सीख दो! मान गई तो संतोष की बात कहाँ उठती?"

एक पुरानी थाली में रोटी-दाल परोस कर वह लाला के आगे कर देती। लाला खाने बैठते और प्रेम से कहते—"जित्तू सो गया है तब तू ही आकर बैठ जाओ, न। मुझसे इतना न खाया जाएगा।"

जित्तू की माँ निहाल हो जाती। गर्दन उठाकर कहती—"तुम खा लो, जो न खाया जाए छोड़ देना, मैं सधा लूँगी।" लाला जो भी छोड़ते उसे जित्तू की माँ सधा जाती। उसी थाली में सबको खाना पड़ता। कारण लाला के घर एक ही थाली चलने का रिवाज था। जब तक वह फूट कर बेकाम न हो जाती, दूसरी थाली नहीं आती।

लाला अकेले खाते और देर से मुँह चला-चला कर खाते। चने की चीज चबा-चबा कर खानी चाहिए। इससे सेहत बनती है, ताकत आती है। इस बीच बड़ी-बड़ी बातें हो जातीं पति-पत्नी के बीच।

लाला कभी गृहस्थी का रहस्य बताते हुए कहते :—"लौकी या केले की तरकारी जब बनती है तो लोग उनके छिलके फेंक देते हैं। छिलके कभी न फेंको। छिलकों की अलग तरकारी, भुँजिया बनती है। बड़ी ताकत है छिलकों में। जैसे माँड़ में ताकत होती हैं मगर लोग फेंक जाते हैं। वैसे ही छिलकों को लोग नहीं समझते। इन्हें नमक और तेल में डालकर अँचार भी बनाया जाता है।"

रसोई की कला बताते हुए कहते :—"दाल-तरकारी में मिर्ची ज्यादा डालो। बिना तीते के स्वाद नहीं आता। स्वाद के बिना भोजन ठीक नहीं होता। दाल में गिन के दस दाने चने डालो बाकी पानी से भर दो। दाल में जूस ज्यादा होना चाहिए। और जूस पानी से ही बनता है। हल्दी और मसाले कभी काम में न लाओ। ये पेट को कमजोर बनाते हैं।"

मीठे की उपयोगिता बताते हुए कहते :—"मीठा बच्चों के अलावा किसी को न खाना चाहिए। इससे घाव, फोड़ा, फुन्सी की बीमारियाँ होती हैं। मीठा खून को खराब करता है। जहाँ तक हो सके बच्चों को इससे बचाना चाहिए। चीनी तो कभी भूल कर भी न खाओ। विलायती होती है। पेट बिगाड़ देती है। हाँ, गुड़ या छोआ काम में ला सकती हो। माँड़ में छोआ मिला दो, देखो उसमें दूध से भी ज्यादा ताकत आ जाती है। दूध में तो पानी मिला रहता है मगर इसमें मिलावट की गुंजाइश नहीं।"

घी की उपयोगिता पर लेक्चर देते :—"शुद्ध घी कह कर सब ठगते हैं। उससे अच्छा डालडा होता है। विज्ञान से बनाया हुआ। डाक्टरी परीक्षा से बनाया हुआ। अच्छा है इनकी जगह तेल इस्तेमाल करो। तीसी का तेल एक चम्मच, एक सेर घी के बराबर होता है। बस दो-चार बूँद से अधिक न डालो, नहीं तो वही हालत होगी जो एक सेर घी पी जाने से होती है।"

नौकर, दासियों की उपयोगिता पर कहते :—"फैशन हो गया है दाई रखो, नौकर रखो। मिहनत से भागते हैं इसीलिए तरह-तरह की बीमारी होती है। पुरुषों को सुबह उठकर टहलना चाहिए। इससे मिहनत होती है और तन्दुरुस्ती ठीक रहती है। पुरुष अगर कुएँ से पानी भरे तो मुगदर भाँजने से अच्छा है। जिस घर में ऐसा होता है वहाँ बीमारी नहीं आ सकती। मुझे न देखो दस साल से बीमार भी नहीं पड़ा, पानी खींचता हूँ इसीलिए।"—इसी बीच जीत्तू की माँ उनके मुँह पर हाथ रख देती :—"हुश ! भगवान न करे बीमार पड़ो। क्या बक जाते हो, कुछ ठिकाना नहीं ?"

तभी लाला कहते :—"अच्छा, पानी बढ़ाओ ! बहुत खा गया।" लोटे का पानी आगे बढ़ाकर जित्तू की माँ कहती :—"थोड़ा और खा लो।" "बस-बस, बीमार डालोगी ?"—लाला कहते और जित्तू की माँ चुप होकर उनका मुँह देखने लगती और वे गट-गट लोटे भर का पानी पी जाते। फिर लोटा जमीन पर रखते हुए कहते :—"धोती भी क्या वस्तु है ? जब चाहे साड़ी का काम ले लो। पुरानी होकर फट गई तो लुंगी बनवा लो। लुंगी फटी तो पैजामे बनवा लो। पैजामा फट चला तो जाँघिया बनवा लो। जाँघिया फट चली तो काट कर लंगोट निकाल लो। इसीलिए मोटे मारकिन की धोती पहननी चाहिए। वर्षों चलती है। फिर गमछा, चादर, कमीज, तकिए का खोल, फ्राक, जम्पर, रूमाल सब धोती से ही निकाले जाते हैं !"

उनकी तरकीबें सुनकर जित्तू की माँ एक फरमायश पेश करती :—"जित्तू के सिर का फोड़ा बढ़ता ही जा रहा है। पक गया है। कोई डाकदर-बैद को दिखला दो ना।"

लाला संतोष दिलाते हुए वीरों की अकड़ में कहते :—"घबराओ नहीं। दूध बन्द कर दो। अगर दूध के बिना मानता नहीं, तो छोआमत डालो। सादा पिलाओ। और घर में जब बैद बैठा है तब दूसरों के घर कौन जाए ? कल ही नीम की पत्तियाँ चढ़ा दो। थोड़ी-सी निमकौड़ी पीस कर दाल के साथ खिला दो। सारा खून साफ ! फोड़ा आप अच्छा हो जाएगा।"

जित्तू की माँ फरमायश कम नहीं करती। एक खतम हुई फिर दूसरी आ गई :—"पड़ोस के लड़के स्कूल जाने लगे हैं। मेरा जित्तू भी स्कूल जाएगा। कोई दस रुपयों का प्रबन्ध करो। न हो, कहीं मास्टरी कर लो। साँझ को समय निकाल लो। लड़का भी तो बड़ा हो गया है।"

जवाब तुरत मिलता :—"राम ! राम !! दस रुपयों के लिए दूसरे के घर मास्टरी करूँ ? मास्टरी ही करनी है तो अपने घर की क्यों न करूँ ? अगले महीने से खुद पढ़ाऊँगा—जित्तू को। बाप जो पढ़ाएगा—वह मास्टर क्या पढ़ा सकता है ? अपना काम खुद करने से ज्यादा अच्छा होता है। फिर आजकल स्कूलों का क्या भरोसा ? केवल खिलवाड़ होता है। मास्टरों को तनख्वाह अच्छी नहीं मिलती। सब फाँकी देते हैं।"

तीसरी फरमायश तैयार रहती :—"पड़ोस में देखो न कितनी अच्छी साड़ी आई है ? देखते नहीं बनती। कहीं से ऊपर करो न दस रुपए। मेरा भी तो मन है।"—इस पर लाला पिघल कर राँगा हो जाते। और अन्तिम अस्त्र निकाल लेते। मीठी-मीठी आवाज में कहते :—"कहाँ से लाऊँ, जित्तू की माँ ! साढ़े तीन सौ पाता हूँ। तीन सौ ठीके वाली कम्पनी काट लेती है। पचास बचते हैं। सोचता हूँ आधे पर नाव क्या लौटाऊँ ?"

जित्तू की माँ उत्सुकता से पूछती :—"अगले महीने में कितना हो जाएगा ? जरा हिसाब तो समझा दो।"

लाला कहते :—"दस साल पूरा हो गया। एक महीना बीत गया और अगले महीने दूसरी किश्त पड़ेगी।"

जित्तू की माँ पूछती :—"कुल कितना हुआ ?"

लाला कहते :—"दस साल का—३६ सौ साल के हिसाब से ३६ हजार, और अगला महीना लेकर दो महीने की किश्त ६ सौ। कुल ३६ हजार ६ सौ ! दस साल कट गए। जितना कटा उतना ही और काट लो, जित्तू की माँ ! आधा रास्ता पार हो गया। अब क्या है ? पूरे साठ

हजार का मकान और दस हजार की गाड़ी ! दस हजार बैंक में ! यह हिसाब है !"

जित्तू की माँ सारा दुख भूल जाती, आनन्द विभोर होकर कहती, "आखिर दफ्तर के बड़े बाबू हो, न ? कमाई का मुकाबिला कौन करेगा ? हिसाब से जमा करते हो ।"

लाला गर्व से कहते :—"अच्छा ! अच्छा !! काम से थक गया हूँ । जमा-पूँजी का हिसाब पीछे ! चला सोने !" लाला अपने बिस्तर पर चले जाते और घर का चिराग गुल कर खर्राटे भरने लगते । इधर जित्तू की माँ खाना खाकर माँड़ में छोआ मिलाकर दो-चार निमकौड़िया उसमें डाल देती, रात में जित्तू जगता है—उसके लिए दूध चाहिए । फिर रसोई घर से कड़ाही, थाली, लोटा और लोहे की चम्मच उठा कर माँजने लगती ।

उधर पड़ोस के घर में पढ़ते हुए बच्चे कह उठते :—"लाला का घर देखो ! चिराग बुझ गया ! सब साँझ ही सो गए !"

बहेंगवा

"बातास गीरेगा............! धरती डोलेगा...........! अकाल परेगा...........! लास दो! माटी दो! काली का बलिदानी दो!" प्रभात की मन्द-मन्द बहती हुई पुरवैया के कन्धों पर लहराता हुआ स्वर फूलो चुड़िहारन का हृदय चीर गया। आज पौ फटने के पहले ही रोते हुए उल्लू की चीख-सी यह आवाज उसके दरवाजे पर ही उग आई थी। गोद में अपने एकमात्र बच्चे सगरे को छाती से चिपकाते हुए फूलो गरम भाँड़ के चने जैसा दरक गई। हरे भरे धानी रंगों में डूबे हुए गाँव की एक अकेली विधवा फूलो सारे समाज के लिए काँटा बन रही थी।

फूलो विधवा थी लेकिन बूढ़ी नहीं। वह बूढ़ी नहीं तो युवती भी नहीं थी। चालीस की उमर पर विधवापन की चादर कहीं अधिक चुभने-वाली होती है। यदि फूलो बूढ़ी होती तो शायद दर्द का पात्र वह उतनी नहीं होती जितनी चालीस वर्षों की प्रौढ़ा होने पर लगती थी। भरे पूरे गालों पर उदासी की परत नीचे-नीचे बिछती जा रही थी लेकिन झुर्रियों के बदले अभी लाली का रंग जैसे उसे आधे रास्ते का राही बना डाल रहा था। बूढ़ी होती तो राह की यात्रा समाप्त समझ कर उसे भी संतोष होता। लेकिन उसे तो अभी उतना ही समय काटना था जितना वह बिता चुकी थी। एक मात्र संतान के सहारे उसे सब कुछ सहना था और इस बहेंगवा की मनहूस चीख से भरे हुए गाँव में उसे लोमड़ियों और आदमी के हिंसक पंजों के बीच रहना भी था।

फूलो शरीर को गठरी की तरह बाँध कर अपने बच्चे सगरे को जैसे चारों ओर से घेर लेना चाहती थी। उसने सगरे को धीरे से नीचे की ओर खींच कर अपनी गरदन के गढ्ढे से ढाँक लिया। तभी बहेंगवा का शंख

जोरों से फट पड़ा। उसके दरवाजे पर ही शंख की फूँक भरता हुआ बहेंगवा बोल उठाः—"लास दो! माटी दो!! काली का बलिदानी दो" और फूलो लोमड़ियों का चीत्कार पौ फटने के समय भी सुन रही थी। बीच-बीच में कभी उल्लू की चरचराहट और दो बिल्लियों के लड़ने की आवाजें भी जैसे उसके घर की किवाड़ें तोड़े डाल रही थी।

बहेंगवा गाँव का मुसहर था। साँपों को उबाल कर खा जाता। चूहों को सेंक कर बिना पकाए ही, अमरूद के सड़े हुए गोलों की तरह मुँह में घुला डालता। गिरगिट और बिसतुइया की चटनी उसे इमली और अनार की चटनी से भी अच्छी लगती। मेढ़कों और दीमकों के अँचार उसे मालदह आम और सेवई के रसों से भी अधिक मादक लगते। बिल्ली का कलेजा उसके लिए हजार कलकतिया गुलाबजामुन से अच्छा था। बहेंगवा मुसहर से औघड़ बन गया था। मसान-घाट से आदमी का जला हुआ सिर उठा लाता और उसमें इधर-उधर सटी हुई पिघले माँस की बोटियों को ताजी कचौड़ियों की तरह दाँतों तले दबा डालता। आदमी की खोपड़ियों को भीतर से खाली कर उनमें पकी हुई दाल रखता, कुत्तों की खाली खोपड़ियों में भात खाता और बैलों की खोपड़ियों से दूध के बर्तन का काम लेता। माँस खाने के लिए उसने कई प्रकार की खोपड़ियाँ अपने पास रख ली थीं जिनमें अधिकांशतः गदहे और लोमड़ियों की खोपड़ियाँ थीं। वैसे वह जब कभी भी घर से बाहर निकलता हर प्रकार की खोपड़ियाँ अपने साथ ले लेता और सारे गाँव के बड़े-बूढ़ों, स्त्रियों और बच्चों तक से उनका परिचय कराता। यों तो सारे गाँव के लोग उसकी हरकत को उत्सुकता से देखते किन्तु सबके बीच उसके प्रति एक भय मिश्रित श्रद्धा थी।

वह अपने को केवल औघड़ ही नहीं कहता वरन् तेरह विद्याओं का पंडित भी कहा करता जिनमें डाइन, भूत-प्रेत, जिन्न, डाकिनी, पिचास, राकस, पनबूड़ा, चुड़ैल को अपने वश में रखने की विद्या प्रमुख थी। यों तो जादू-टोना, मुर्दे को जिलाना, आदमियों को खाकर बीमार कर देना

अथवा मार डालना, किसी की नाक से खून की धारा बहाना, छाती कूटना, चीजों को बदबूदार बनाना, मीलों दूर बैठे-बैठे किसी का कलेजा खा जाना, पेट में सींगें उगाना—उसके लिए साधारण-सी बात थी। हाँ, वह थोड़ा संकोच खाता तो ब्रह्म से। ब्रह्म को मनाने में उसे काफी कठिनाई होती और अक्सर जिन्हें दिन दहाड़े ब्रह्म पकड़ लेता उनके पास वह नहीं जाता। इसका एक कारण यह भी था कि ब्रह्म उसके गुरू थे और उसने इतनी सारी विद्याएँ उनकी कृपा से ही प्राप्त की थीं। यों तो वह अपने को शंकर का अवधूत भी कहा करता तथा चैत, जेठ, भादो और माघ की अमावस को खप्पर लेकर रात-रात भर नाचता और शंकर की पूजा करता। इस पूजा में भैंस, बकरी और सूअर का कच्चा खून ही चरणामृत का काम करता। प्रसाद के रूप में भुने हुए तेलचट, चीटें-माटें, टिड्डे और मकड़े बाँटे जाते। कभी-कभी इन्हें भूनने के बदले उबाला भी जाता।

अपने जीवन में बहेंगवा ने इकावन डाइनों को बनाया था। इक्कीस औघड़ों को दीक्षा दी थी। पाँच बलिदानी की थी जिनमें एक बूढ़े, एक बाँझ स्त्री, एक सुहागिन तथा दो बच्चों की थी। उसकी उमर अधिक नहीं केवल तीस साल की थी। शरीर पौने छह फुट का था मगर था माँसहीन। पिचके-पिचके गाल, गर्दन की हड्डियाँ उभरी हुईं, नाक में लोहे का तार पिरोया हुआ, दोनों कान के किनारे फटे हुए, ऊपर का होठ बीच से कटा हुआ तथा दो लम्बे-लम्बे दाँत बाहर को निकले हुए, आँख की भौंहें छिली हुईं, सिर के बीच के बाल मुड़े हुए, बड़े-बड़े नाखून जैसे उसकी आकृति और बनावट का परिचय देते थे। वह काला चोंगा पहनता जो उसकी गर्दन से लटककर पैर के घुटने तक को ढाँके रहता। गाँव से दूर बबूल के बागीचे में उसकी अकेली झोपड़ी थी जहाँ वह आधी रात को अक्सर आग जलाए बैठा रहता और आस-पास घूमनेवाली लोमड़ियों को पुचकारा करता।

वह पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही दोरंगा औघड़ के साथ भागकर कामरू-कमक्खा चला गया था जहाँ जादू सीखने के लिए अनेक व्यक्ति

जाया करते थे और जो विद्या पूरी नहीं सीख लेता, वह वापस लौटकर नहीं आता। औघड़ विद्या सीखने के लिए बड़ी तपस्या करनी पड़ती। तरह-तरह की कठोर परीक्षाएँ देनी पड़तीं। सबसे कठोर परीक्षा 'अगिन दान' की होती। बहेंगवा इस परीक्षा में सबसे आगे रहा।

'अगिन दान' में गरम लोहे से उसकी पीठ, हथेली, पैर के तलुवे और गाल दागे गए थे। दो दिनों के बाद उन पर छाले पड़ गए। उसी दिन औघड़ों के महागुरु ने उसे दीक्षा दी। एक खपड़े के टुकड़े तथा एक बाँस के रुखड़े डंडे से उसके उन छालों को छीला गया था। और माँस के उन छिलकों को उबाल कर हलुआ बनाया गया। वही हलुआ खाने के बाद वह 'अगिन दान' की परीक्षा में सफल समझा गया। उसके शरीर में यद्यपि बेतरह जलन थी फिर भी वह सरपत के पत्तों पर तीन दिनों तक सोया रहा और 'उफ' तक भी नहीं कर सका। तब से वह पक्का औघड़ होने के लिए गुरुओं द्वारा स्वीकार कर लिया गया। कान के किनारे तथा होंठ के मध्य भाग इसी काल में काट कर निकाले गए थे। नाक में लोहे का तार गरम करके पिरोया गया था जो उसकी सफलता का सूचक था।

झारखण्ड के देश में बलिदानी से अधिक 'टोना' का परभाव था। यों तो वहाँ आते ही उसने एक बूढ़े मर्द और एक बाँझ औरत की बलि-दानी चढ़ा दी थी। सभी औघड़ और ओझा-समाज में उसकी कदर होने लगी थी। वहाँ कोई बुढ़िया डाइन विद्या सीखना चाहती तो उसे अपने बेटे को खाना पड़ता। यदि कोई युवती सीखना चाहती तो उसे अपने पति को खाना पड़ता। यह आम रिवाज था।

खानेवालों को कुछ मिहनत जरूर करनी पड़ती थी। कुछ लोगों के सहयोग से रात के समय खाए जाने वालों की खटिया उठा कर किसी ओझा के दरवाजे पर ले जाया जाता और उससे खाने की इजाजत माँगनी पड़ती। डाइन-विद्या का गुरु ओझा यदि इजाजत दे देता तो खाए जानेवालों की खटिया के चारो ओर सात बार चक्कर लगाया जाता और बुदबुदा कर कहा जाता—"कलेजा खाबो, देवी माय अपने ही सवांग

का।" यदि वह खाए जानेवाला व्यक्ति जाग नहीं पाता तो डाइन विद्या पूरी हो गई और कहीं बीच में ही जग गया तो अधूरी।

बहेंगवा ने ओझा बनकर ५१ डाइनों को बनाया था। उनमें ४० डाइनों के खाए हुए सवांग मर गए थे। सात बीमार होकर बुरी तरह पड़े थे। चार अपंग हो गए थे। इसलिए भी उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई थी। यहाँ तक कि तेरह बूढ़ी डाइनों के साथ उसने विवाह भी किए थे। डाइनों के साथ विवाह करने वाला ओझा सर्वगुण सम्पन्न माना जाता और यह सौभाग्य दो एक व्यक्तियों को ही प्राप्त था। बहेंगवा की तेरह डाइन-पत्नियों में आठ सत्तर वर्ष से भी ऊपर की थीं। तीन साठ और दो चालीस वर्ष से अधिक की थीं। एक तरह से वह बड़ा सरदार हो चला था। अपने परिवार के साथ रहकर वह बड़ा गौरव अनुभव करता था। किसी प्रकार की बीमारी का उसे भय न था। झारखण्ड के महतो लोग उससे डरकर थर-थर काँपा करते थे। "फूलो चुहारिन! फूलो चुहारिन! दुआर खोलो! औघड़ को कुछ दाना-पानी दो।"—ऐसी आवाज से फूलो का दरका हुआ दिल चन-चना उठा। कैसी विपत आ गई? सारा गाँव इस औघड़ के जादू में समेटा जा रहा है! भगवान भी इसी औघड़ के हाथ लग गए। फूलो काँपती हुई उठ बैठी जब बहेंगवा की दूसरी आवाज भी झल्लाहट से भरी हुई आई।

"काहे को नाराज होते हो बाबा। भोर के पहर शरीर ढीला हो ही जाता है।" फूलो आरजू-मिन्नत करती हुई दरवाजा खोलने लगी। दरवाजा खुलने में देर भी न लगी और बहेंगवा ने आँखें तरेरकर कहा :—"क्या मन है फूलो? सारा गाँव बाबा अलख निरंजन के दरबार में आ गया। अब तू ही एक बची है। न डाइन सीखती है और न सगरे को देती है औघड़ विद्या सीखाने के लिए। विद्या या इलम सीखने से कोई छोटा नहीं हो जाता। समझी!"

"क्या करोगे बाबा? एक घर के लिए भगवान नाराज थोड़े ही होंगे?" —वह विनम्रता से बोली।

"तू तो मलेछ निकलती जा रही है। बाबा अलख निराजन तुम दोनों को मोखच देगा। इसे काहे भूलती है?"—वह बोला।

"अच्छा! सोचूँगी! जरा मोहलत तो दो महीने भर की! आज का दाना-पानी लेते जाओ! बाबा!"—वह आगे कुछ न बोल सकी। अन्दर से पाव भर चावल और पाव भर दाल मिलाकर लेती आई और बहेंगवा के कमण्डल में डालकर मिन्नत करती हुई बोली—"बाबा! तू ही हमारे भगवान हो। आशीष दो हमारा बेटा फले फूले। बेटा ही में हमारा मोखच है।"

"विद्या सीख ले कोई हरज नहीं। गाँव में एक तू ही काहे को बट्टा लगावेगी?"—कहता हुआ बहेंगवा फूलो का दरवाजा छोड़ आगे बढ़ गया। एक सन्नाटे की आवाज में चुभती तलवार की तरह स्वर-लहरी गूँज गई :—"लास दो! माटी दो!! काली का बलिदानी दो!!!"

फूलो का दम घुटता जा रहा था। अब इस गाँव में वह नहीं रह सकती! बीस वर्षों से वह यहाँ रहती आई है और सारी हरकतें उसने देखी है। गाँव वाले किसी का भला नहीं देख सकते। चौदह बीघे खेत में उसके अब चार बीघे ही रह गए हैं। उस पर भी नजर। लूटने-खसोटने की लालच! ऊपर से यह ओघड़ का राज नया रंग ला रहा है। वह अपने आदमी की हालत भूली नहीं है। दस बीघे खेत गाँव के मुसहरों ने जोत लिया। चारो तरफ से बँटवारा कर लिया जैसे उनके बाप ने खरीदी हो। यह ओघड़ का मुआ न जाने कहाँ से आ मरा जो सबके सब इसके पीछे विद्या सीखने पर उतारू हैं। किसी की नाक में लोहा, किसी की चमड़ी छिली हुई और किसी का काँटे पर सोना, रात-दिन यही सुनो। कोई जी भर बातें करनेवाला भी नहीं। यह मुसहरिन औरतें डाइन सीखती हैं। अपने ही बेटे-भतार को खाते लाज नहीं आती। एक उसका भी तो बेटा है जिसे वह छाती से लगा कर भी पूरी नहीं होती। एक उसका भी तो भतार था। सबके साथ मेल-मोहब्बत, किसी का बुरा नहीं। दस बीघे की जमीन गई मगर फिर भी सबके साथ हँसना-बोलना। उसे याद है! सब याद है! एक रात को घर की किवाड़ तोड़ दस जने घुस आए थे। उसके आदमी

की टाँग पकड़ कर घसीट ले गए। बाहर के मैदान मे पन्द्रह मिनट तक उसे घसीट कर घुमाया और फिर चित्त लिटाकर गर्दन में भाला दबा दिया। चार-पाँच सेर खून गिरा था। कोई आध घंटे तक छटपटाया था। मगर जल्लाद न पकड़े गए न मौत ने खाया। फूलो कलेजे पर पत्थर रखकर जी रही है। अब वह नहीं रखेगी यह पत्थर! वह कल ही गाँव छोड़कर चली जाएगी। शहर में कहीं बर्तन माँज लेगी लेकिन यह कैद अब उसे बर्दाश्त नहीं! क्या होगा चार बीघे खेत जाएँगे? वैसे ही इनसे उसे क्या मिलता? आधे से अधिक तो मुसहर ही खा जाते। बचा खुचा उसमें भी हिस्सा। औघड़ को, डाइन को, हवन को, काली मैया को, दान-पुन्न, सब को। पेट भरने के लिए शहर भी बुरा नहीं। यह झंझट झगड़ा तो नहीं रहेगा। फूलो यह सब सोच रही थी। घंटा भर भी नहीं हुआ बहेंगवा के गए तब तक दूसरा आ पहुँचा। औघड़ को दाना-पानी दो। नया औघड़ है! सराप दे देगा। घर का अन्न कूड़ा बन जाएगा!

"औघड़ का मुकाम! दाता को सलाम!! बाबा अलख नारायण!!!–" और शंख की फूँक से फूलो चकित होकर चावल दाल की मिलावट ले आई और डाल गई उस नए औघड़ की खोपड़ी में!

"यह तेरे भतार की है! खुश रह!!—"अपने हाथ की खोपड़ी की ओर इशारा कर वह हँसता हुआ चला गया। फूलो उस खोपड़ी को देखकर सन्न रह गई। फिर फूट-फूटकर रोने लगी।

दो

दिन भर के बाद गोधूलि आ गई थी। गाँव के घरों से धुएँ के बादल निकलकर आकाश की ओर उड़े जा रहे थे। एक कुहासा-सी चारो तरफ बिखर रही थी। फूलो चूल्हा आँगन में जलाए बैठी थी। उसका बेटा सगरा थोड़ी देर में भूखा हो जाएगा। जल्दी से आँच ठीक करती हुई वह आग फूँकने लगी। बाहर के दरवाजे पर खड़ा सगरा थोड़ा-सा सिर निकाल झाँक रहा था। गाँव के दो एक आदमी उसके दरवाजे से निकल जाते थे। सामने एक छोटा-सा मैदान था। बाईं ओर सीधा एक रास्ता हाट

की ओर गया था। दाईं ओर एक रास्ता सीधे बस्ती की ओर कुछ दूर जाकर समाप्त हो गया था। उसके घर की बगल से एक गली मुड़ गई थी, जो पीछे बाँस के जंगल में चली गई थी। बाँस के जंगल के पीछे आमों का बागीचा, फिर उसके पीछे बबूल का लम्बा बागीचा और सपाट मैदान था जहाँ वहेंगवा की झोपड़ी और लोमड़ियों की माँदें थीं।

सगरा एक क्षण को सिर निकालकर झाँक लेता फिर चौखट पर खड़ा होकर चुप-चाप सोचता। "बेटा, बाहर नहीं जाना"—फूलो की आवाज उसे रह-रहकर सावधान करती और वह भी "अच्छा" कहकर सिर अन्दर कर लेता फिर चौखट से लग कर सट जाता। एक बार फूलो की आवाज आई और वह जवाब देकर फिर बाहर झाँककर खड़ा हो गया। एक छोटी-सी 'ठक' की आवाज उसे सुनाई पड़ी। उसने आँखें उठाकर देखा तो बोंदू सुसहर घोड़ी पर सवार था। घोड़ी पर बोरे बँधे थे। हाट से आ रहा था। सगरे को देखकर घोड़ी रोक दी और दो लड्डू उसकी ओर बढ़ाता हुआ बोला—"ले लो बेटा हाट से आ रहा हूँ। घोड़ी पर अनाज बँधा है। उतर नहीं सकता।" सगरे के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। बोंदू प्रायः उसे इसी तरह लड्डू और मिठाइयाँ दे चुका था। वह उसके लिए अपरिचित नहीं था। सगरा एक पल में कूदता हुआ चौखट लाँघकर दरवाजे के सामने से जाते हुए रास्ते पर खड़ा हो गया और उचक कर बोंदू के हाथ से लड्डू लेने की चेष्टा कर रहा था। घोड़ी चुपचाप खड़ी थी और बोंदू उस पर बैठा हुआ नीचे तक हाथें बढ़ाकर उसे लड्डू थमाने की चेष्टा कर रहा था। दो-एक बेर उचक कर वह खड़ा हो गया। बोंदू ने अपना हाथ झुकाया और उसकी बाँह पकड़ कर घोड़ी पर खींच लिया। "ऐसे नहीं ऐसे।"—उसे पुचकारते हुए उसने उसके हाथों में लड्डू डाल दिए। लड्डू पाकर सगरा निहाल था मगर बोंदू उसके मुँह पर सिर का लम्बा-सा मुरेठा बाँध जल्दी से घोड़ी को एँड़ लगाता हुआ बगल की गली में मुड़ गया।

उसने सगरे का मुँह, नाक, आँखें सब बाँध दिए और पैरों को बाँध कर एक बोरे में डाल दिया। बोरे में थोड़ी छटपट जरूर हो रही थी किन्तु किसी ने देखा भी होगा तो उसके लिए यह घोड़ी की छलांग और सरपट चाल के सिवा और कुछ न थी। घोड़ी पर बँधे सभी बोरे हिल रहे थे। किसमें अनाज है और किसमें सगरा? यह किसी को पता नहीं लग सकता था। छलांगें भरती हुई घोड़ी बाँस के जंगल को पार कर गई। आम के बगीचे में बहेंगवा खड़ा था। उसने बोंदू को देखते हुए पूछा—"मार लाए चिड़ी।" "हाँ, उस्ताद चेला हूँ तो तुम्हारा।"—बोंदू ने जवाब दिया और उसका चेहरा गर्व से भर गया।

"ले चलो बबूल के बागीचे के उस पार। मन्दिर के पास! चौकी तो तालाब में जमी है।"—बहेंगवा के संकेत पर बोंदू ने घोड़ी बढ़ा दी। आम का बागीचा पार हुआ। बबूल का बगीचा बीत गया। सपाट मैदान भी खतम—तब आया मन्दिर। गाँव से डेढ़ मील दूर। उसके पास ही एक छोटा-सा तालाब था। तालाब क्या, छोटा-सा गड्ढा था-पानी भरा—नोचू बाबा का आहर। घोड़ी वहीं रुक गई और बोरे में बँधा सगरा, सभी बोरों के साथ ही जमीन पर पटक दिया गया। छटपटी अभी भी रह-रह कर हो जाती इसलिए एक दूसरा बोरा और चढ़ा दिया गया। घोड़ी की पीठ पर लगी रस्सी उतार ली गई और बोरे के चारो ओर लपेटकर बाँध दी गई। एक तीसरा बोरा उस पर फिर लपेट दिया गया। छटपटी बन्द हो गई। थोड़ी देर बाद बहेंगवा आया।

"कहो चेला, आज हाथ मार लिए।"—बहेंगवा बोला।

"हाथ क्या मारना, यह तो कभी भी हो सकता था, गुरू।"—बोंदू बोला।

"हाँ, लाओ! सोचते-सोचते थक गया। कुजात मानती नहीं तो अब मान लेगी। आखिर धरम कब तक रोका जाए? पाप की गठरी फट गई।"—बहेंगवा ने संतोष के साथ कहा।

"तो उस्ताद ! पूजा-पानी में अब देर काहे की ? जल्दी निपट लो ! धरम का कारज-जल्दी होवे तो ठीक।"—बोंदू ने कहा।

"हाँ, हाँ, निपट लो। अलख बाबा भूखे होंगे।"—कहता हुआ बहेंगवा उठा और उसने बँधे बोरे को उठाकर मन्दिर के पत्थर पर जोर से पटक दिया। सात बार पटकने के बाद बोरा लाल रंग से भींग गया। मन्दिर के भीतर ही बोंदू, एक बड़ा-सा हौंड़ रखा हुआ निकाल लाया। हौंड़ का लम्बा मुँह खोला गया। उसमें भींगा हुआ बोरा रख दिया गया। ऊपर से लोहे का ढक्कन बैठाया गया और लोहे के बड़े-से तार से उसे लपेट-लपेट कर बाँधा गया। मुँह अच्छी तरह बँध गया। दोनों ही अवधूत नंगे हो गए और हौंड़ अपने कन्धों तक उठाकर आहर में पैठ गए। छाती तक पानी था। आहर के बीच हौंड़ रख उसे ठीक से दबा दिया और डुबकी लगाकर उसके चारों ओर कुछ ईंटें रखकर बाहर निकल आए। हौंड़ बैठ गया था। एक बहुत बड़ा काम सिर से टल गया। दोनों मन्दिर में गए, काली-मूर्ति को लेट कर प्रणाम किया, फिर वस्त्र पहनकर गाँवों की ओर मुड़ गए। गोधूलि समाप्त हो गई थी। आसमान में सितारे भर चुके थे। चाँद नहीं था! अमावस थी। औघड़-पूजा के लिए यह शुभ घड़ी थी। बहेंगवा की छाती फूली जा रही थी और बोंदू की मुस्कान देखने ही लायक थी।

इधर गाँव में बहेंगवा और बोंदू लौटे थे। उधर फूलो का दूसरा ही हाल था। वह हर घर के भीतर जाती और अपने लड़के के बारे में पूछती। दस घर पूछने के बाद जोरों से चीखने-चिल्लाने लगी। "हाय मेरा लाल, कहाँ गया ?" रोती, सिसकती और चिल्लाती हुई वह घर-घर में जाने लगी किन्तु सबने उसे निराश ही किया। धैर्य की दीवार ढहती जा रही थी और अन्त में फूलो एक घर के दरवाजे पर रखे पत्थर से अपना सिर फोड़ बैठी। बालों को बिखेरकर नोचने लगी। माथे से खून की धारा बहने लगी। सारा चेहरा रंग गया। साड़ी का पल्ला माथे पर से सरककर कमर में बँध गया। आवाज कर्कश-सी हो गई :—"काली मैया बनकर एक-एक

को चबा जाऊँगी। दे दो मेरा बेटा! औघड़ नहीं बनाऊँगी। औघड़ का माँस खिलाऊँगी।" और हाथों में झाड़ू लेकर वह सबका आँगन कूटने को तैयार हो गई।

"जिसने मेरे लाल को चुराया है, उसका कलेजा काढ़ लूँगी! विद्या जानती हूँ। ऐसी वैसी नहीं। वज्जर गिरा दूँगी। पेट में कोढ़ लगा दूँगी। आधी रात को मरेगा तड़प-तड़पकर, चुरानेवाला। अब भी लौटा दो जिसने लिया है मेरे लाल को।—"फूलो चिल्लाती जाती और घर घर खोजती जाती। गाँव में पूरा हंगामा मच गया। 'अरे फूलो डाइन हो गई! डाइन हो गई!"—शोर करते हुए औरत-मर्द सब अपने घरों से निकल कर इकट्ठे होने लगे और फूलो के पीछे-पीछे दौड़ने लगे। उनमें भी भय आ गया था। कहीं फूलो का सराप न पड़ जाए। न जाने किसे खा जाए? डाइन का क्या भरोसा?

अचानक फूलो ने किसी की गर्दन पकड़ ली। तुमने लिया है मेरे लाल को। लौटा दो नहीं तो खून फेंकोगे। आज ही कलेज काढ़ूँगी।—"फूलो की वाणी सचमुच उग्र थी। दिल को एक बार दहलाने वाली थी। उसकी पकड़ से बौंडू की गर्दन टूटी जा रही थी। किसी तरह पकड़ छुड़ाकर वह चिल्ला उठा—"कहाँ हो गुरू? जान बचाओ डाइन लील रही है।" "पास ही छिपा हुआ बहेंगवा छाती उभारे निकल आया।

"यह क्या कर रही हो माता? तेरा बेटा मिल जाएगा। कहीं गया है थोड़े!"—बहेंगवा ने एक मीठी आवाज में कहा।

"कहाँ है? लाओ जल्दी दो! नहीं तो पका डालूँगी।"—वह चीखी।

"अरे! पहले हवन करो अलख बाबा का! दो दिन हवन फिर तीसरे दिन तेरा सगरा तुझे आप ही आप मिल जाएगा। कहीं जाने की जरूरत नहीं।"—वह समझाते हुए बोला।

"तेरे अलख बाबा की ऐसी-तैसी। झाड़ू मारूँ उसे। पहले मेरा बेटा ला दे।"—वह और भी जोर से चीख उठी।

"मैंने नही लिए हैं ! तेरा बेटा-तू ही जाने। मैं क्या जानूँ ? तू अलख बाबा को बुरा कहती हैं। फिर समझ ले तेरे बेटे की हड्डी गिरेगी तेरे आँगन में। समझ ले अपना हिसाब !"—इस बार वह भी डाँट कर बोला। फूलो उसकी डाँट पर सहम गई। वह हकबका-सी गई। कुछ बोल न सकी केवल माथा नोचती रही। फिर छाती पीट कर रोने लगी।

"औघड़ से खिलवाड़ करती है। देवता पित्तर को गाली देती है। इसीलिए उजड़ रही है। कहा तो—हवन कर, बेटा क्या सबकुछ मिलेगा। जो माँगेगी वही मिलेगा।"—उसका स्वर कुछ मीठा हो गया था।

"अच्छा करूँगी हवन ! बेटा लौटा देना। दो दिन क्या चार दिन करूँगी हवन ?—"वह रोती हुई सहम उठी।

"अलख बाबा तेरी परीच्छा ले रहे हैं। बेटा प्यारा है तो कल से ही हवन की तैयारी कर।"—उसका स्वर धीरे-धीरे कोमल होता गया। फूलो छाती पीट कर थक गई थी। ढीली होकर ही बोली —"जो कहो वहीं करूँ।"

"कल से गाँव-गाँव घूम कर हवन के लिए अनाज माँग। हमलोग भी माँगेंगे। परसों अमावस के गए तीसरे दिन हवन होगा। सगरा के लिए। समझी ! हर घर से माँगना। थाना से लेकर बाभन तक। डाइन का हवन है। सब देंगे। फिर तेरा बेटा तुझे जरूर मिलेगा।"—वह समझाता गया और वह चुपचाप सुनती रही। चारो ओर से घेर कर खड़े लोग शान्त थे।

"लाओ अभी से माँगती हूँ।"—वह एक झटके से उठी और आँचल पसारकर माँगने लगी। "डाइन हूँ ! हवन के लिए अनाज दो।—"उसकी आवाज सुनने वाले आ-आकर उसके फेटे में अनाज फेंकने लगे। थोड़ी देर में ही काफी अनाज इकट्ठा कर चुकी वह। फेटा भर गया तो बहेंगवा ने कपड़ा बिछा दिया। इसी तरह फूलो माँगने निकल गई और आनाज का भण्डार बहेंगवा के जिम्मे आ गया। हवन वही करेगा। रात के समय अग्नि जलेगी। औघड़ का हवन कोई देखता नहीं। बबूल के बागीचे में हवन-कुण्ड बना था। कोई विशेष तैयारी नहीं, केवल अनाज और पैसे

चाहिए। रात भर रतजगा रहा और रात में ही मंडली की सभा हुई। निश्चय किया गया दूसरे ही दिन से १०१ गाँवो का चक्कर लगाना होगा। फूलो का हवन सबके लिए होगा। दान-संग्रह होगा, पहली बार इस गाँव में, औघड़-यज्ञ के लिए। महायज्ञ के लिए।

दूसरे दिन सुबह डमरू, शंख और घन्ट-घड़ियाल निकल गए। पचास अवधूतों ने मृगछालाएँ, त्रिशूल, टोकरियाँ, खोपड़ियाँ, चमड़े, हड्डियाँ, कौड़ियाँ, बीन, तम्बूरे पसारकर अभियान आरम्भ कर दिया। सारा गाँव दिन होते-होते खाली पड़ गया।

दो दिनों की दौड़-धूप में एक-सौ-एक गाँवों को छान लिया गया। ५१ सेर चावल, २१ सेर दाल, ११ सेर मकई और ११ रुपए नगद आसानी से इकट्ठे हो गए। फूलो का चेहरा काला पड़ गया था। दौड़-धूप और माथे का घाव, उसे शिथिल बना रहे थे। दो ही दिनों में सूख कर काँटा बन गई थी। सिर के बिखरे बालों में धूल की परत जम गई थी। साड़ी का आँचल मैला ही नहीं, खरोंचों से कई जगह फट भी गया था। पाँवों और हाथों में रेखाएँ पड़ गई थीं।

थाने पर वह कह आई थीः—"डाइन हूँ! हवन के लिए अनाज माँग रही हूँ। बेटा खो गया है। उसे लौटाने के लिए हवन जरूरी है।" थाने के बड़ी मूँछोंवाला बाभन हविलदार ने पहले तो उसे डाँटा लेकिन बाद में उसकी पागल जैसी दशा देखकर एक अधन्ना निकाल उसके फेटे में फेंक दिया था। थाना गाँव से कोई सात मील दूर था। मगर फूलो वहाँ भी गई थी। हवन करना था। औघड़ राज बहेंगवा का आदेश पालन करना था।

जैसे-तैसे हवन का समय आ गया। आधी रात के समय अग्नि जलनेवाली थी। बहेंगवा की देख-रेख में केवल चार आदमी और थे। कुल पाँच! पंचभूत!

"औघड़ का हवन कोई नहीं देखता। जो देखता है वह फल भोगता है।"—यह ढिंढोरा, शंख, डमरू और घन्ट-घड़ियाल पीट-पीट कर सबको

सुना दिया गया था। सभी रात होते ही छिप गए थे। बबूल के बागीचे में पंचभूत अनाज लाकर इकट्ठा कर चुके थे। भाले और डंडे की चोटों से खदेड़-खदेड़कर लोमड़ियों को भगा रहे थे। कोई उल्लू इधर-उधर चिल्लाता, उसे ढेला फेंक उड़ा देते। भूला-भटका चमगादड़ आ जाता, उसे सीधी राह दिखा देते। हर तरह से सन्नाटा लाने की चेष्टा हो रही थी।

आधी रात के समय बबूल की सूखी झाड़ियों में, जो हवन-कुण्ड के बीच लाकर रखी गई थीं, आग लगा दी गई। लपट धधकती हुई आसमान की ओर उठने लगी। बहेंगवा ने एक मुट्ठी अनाज उठा कर उसमें झोंक दिया और जोर-जोर से चिल्ला उठा :—"सत्यानाश हो गया। हवन में पातक घुस गया। अलख बाबा की जय हो!" जोरों से शंख की आवाज होने लगी। घण्ट-घड़ियाल भी बजने लगे और गाँववाले अवधूतों की पुकार भी होने लगी। अवधूतों की टोली जब जुट गई तो किस्से का राज खुला।

"फूलो ने हवन देख लिया। सगरे को वह खा गई। अब तो उसकी हड्डी गिरेगी फूलो के आँगन में। फूलो का छप्पर पीटा जाएगा। सबको पाप लगेगा।" टोली को पुकारकर बहेंगवा बोल उठा :—"देखते क्या हो? नोच डालो डाकिन के घर को। गाँव को बचाना है। कोप न गिरे। बतास न परे।"

एक झटके के साथ अवधूतों की टोली चल पड़ी और फूलो के घर धावा बोल दिया गया। छप्पर के खपड़े फोड़े जाने लगे। आंगन में हड्डियाँ और ढेले बरसने लगे। सुबह होते ही एक छोटा-सा घर उजाड़ डाला गया। उजाड़ने पर मिली एक छोटी-सी पोटली जिसमें दो छोटी-छोटी गंदी कमीजें थीं। किसी कोने में पड़ी थी एक हँड़िया और पाव भर दाल! घर की यही सारी पूँजी थी। फूलो का कहीं पता नहीं था। बाद में घर की दीवारें भी ढहाई जाने लगीं।

"घर में कुछ नहीं था, इसीलिए भाग रही थी।"—बहेंगवा बुद-बुदाया। घर ढहाने का काम जारी था। आसमान में सूरज की लाली दिखाई

देने लगी थी। उसी समय थाने का हविलदार पहुँच गया। उसने बहेंगवा के पास आते ही कहा—"क्या है औघड़ महाराज। हवन हो गया!"

"हाँ, हाँ, हो गया हवन! तुम्हारा सीधा बबूल के बागीचे में रखा है। उठा ले जावो।"—बहेंगवा ने अकड़कर कहा।

"अरे तू ही चल के दे दो। हम कहाँ खोजेंगे?"—हविलदार मुस्कुराया।

"अभी धरम का काम हो रहा है, खलल न डालो।" उसने हविल-दार पर आँखें तरेरते हुए कहा जैसे दुनिया भर की अकड़ उसके कलेजे में भर गई हो।

"आँख तरेरते हो। छह महीने का मामला है। नहीं तो फाँसी का तख्ता लटकोगे। समझे!" हविलदार के स्वर में कुछ क्रोध आ गया था।

"जा-जा, छव महीने क्या? झारखण्ड में दो-दो साल हवन किया था पाँड़े! कोई ऐसा-वैसा खिलाड़ी नहीं। तेरे ऐसा गुस्सा बहुत देखा है।"—बहेंगवा की अकड़ और भी बढ़ गई थी। हविलदार इस बार सहम गया। मीठे स्वर में बोला:—"नाराज काहे होते हो महाराज? अपने ही, घोड़ी पर लदवा लूँगा। हाँ, रपट लिख चुका हूँ। सब को गुआही देनी होगी कि फूलो डाइन हो गई और अपने बेटे को खा गई।"

"हाँ, हाँ, जाकर पहले अपना सामान बटोर लो। यहाँ सारा गाँव पीठ पीछे खड़ा है। धरती उलट दूँगा।"—बहेंगवा के उत्तर पर हविल-दार मूँछें उमेठता हुआ चला गया।

सूरज की किरणें धरती पर उतर रही थीं। हवा में कुछ-कुछ सर्दी भर रही थी। अवधूतों की टोली फूलो का घर उजाड़ते हुए गा रही थी:—

"डाइन पकाकर खइहौं।
अलख नारायण गइहौं।
मोखच सरग पइहौं।
औघड़ दास कहइहौं।
हइहौं रे भाई हइहौं।"

तृतीय खण्ड

एक नाटक और एक रिपोर्ताज

नाटक : आग और जली हुई गाँठें

रिपोर्ताज : शहर जिन्दा है।

आग और जली हुई गाँठें

पात्र

राय साहब—प्रसिद्ध बैरिस्टर।

प्रमिला—राय साहब की लड़की।

धीरेन—राय साहब का बड़ा लड़का।

अमृत—राय साहब का छोटा लड़का।

गोपू—राय साहब का नौकर।

[पर्दा उठता है]

दृश्यः—चाय का कमरा! टेबुल पर सफेद चादर बिछी है। उस पर बीच में चाय का एक बड़ा-सा बर्तन रखा है। उसके किनारे चार-पाँच प्याले प्लेट से ढँके पड़े हैं। दो एक तश्तरियाँ भी पड़ी हैं। सारी चीजें इस प्रकार सजाई गई हैं जैसे किसी की प्रतीक्षा हो रही हो। टेबुल से सटकर चार-पाँच कुर्सियाँ रखी हैं। स्टेज पर गहरी नीली रोशनी फैल रही है।

अमृत—(टहलता हुआ) पिंजड़ा! हूँ! पिंजड़े की दीवार जब टूट गई तब जाल घिरा जा रहा है! मकड़े का जाल! चारो ओर! एक हाथ मार दूँ—जाल की सारी रस्सियाँ छिन्न-भिन्न हो जाएँ। इनमें न आत्मा है, न शक्ति! मात्र आडम्बर! भूमिका जिसमें कहने को कुछ नहीं!

[गोपू का प्रवेश]

गोपू—छोटे बाबू! नाश्ते में सेव काट दूँ। पसन्द आएगा? आप तो न जाने क्यों उसे कद्दू से भी बुरा समझते हैं। कहाँ सेव, कहाँ कद्दू? राजा भोज और भोजुआ तेली का डिफरेन्स!

अमृत—(झुंझलाकर) हाँ, हाँ ! जाओ काट दो ! मुझे कोई हिचक नहीं ! (डाँटते हुए) जल्दी जाओ ! मुँह देखना बाद में !

[गोपू का प्रस्थान]

अमृत—काट दो ! मुझे भी काट दो ! लेकिन आदमी को काटने से सजा हो जाती है। ठीक है। ऐसा काटो, प्राण भी न जाएँ। खून के दाग भी न पड़ें और आदमी घुट-घुटकर मर जाए। यदि जीवित भी रहे तो उसकी गणना न हो। उसकी ओर कोई देखे भी नहीं। मेरी तो समझ में नहीं आता—यह अन्धकार, यह कुहासा, यह सब दूर होकर भी क्यों आँखों में समाए जाते हैं ? सब भय और विभ्रम। स्वप्न की तरह दो क्षणों के लिए हृदय को आतंकित कर देनेवाले।

[फिर आवेश से] समुद्र-फेन की तरह नए तट-वासी को कम्पित करनेवाली मनःस्थितियाँ ! मील की दूरी पर ऊँची चट्टान की तरह दौड़ती हुई लेकिन तट तक आते-आते रेखा बनकर रेती में खो जाने वाली। जैसे अपना अस्तित्त्व ही नहीं, सब कुछ रेती के हाथों में—सूर्य-किरणों की ताप में ! दूर में आक्रोश मय—महाकार और समीप में निरीहता की लकीर ! ये आक्रोश, महाकार, अस्तित्त्व, स्थापनाएँ, गरिमाएँ, वेग, सम्मोहन-सभी एक सीमा की रेखाओं में आबद्ध, विवश और निष्क्रिय ! इनका व्यक्तित्त्व जैसे इनकी सीमा हो। इनकी आकृति जैसे इनकी निष्क्रियता हो। झूठी तलवारों के अहम् पर चुनौती नहीं दी जा सकती ! नहीं दी जा सकती ! मैं इन चीत्कारों से नहीं डरूँगा ! ये मकड़ी के जाल मुझे नहीं बाँध सकते। मैं अपनी गति से चलूँगा, जिन्हें न देखा जाए अपनी आँखों पर अपने पंजे रख दें !

[गोपू का प्रवेश]

गोपू—यह क्या छोटे बाबू ? नाटक न कीजिए ! मालिक लोग आ रहे हैं ! कहीं जाइएगा नहीं !

अमृत-—नहीं जाऊँगा ! नहीं जाऊँगा ! इतना डरपोक नहीं हूँ। जाऊँगा भी तो ऊपर से किताब लेकर चला आऊँगा। आने दो, जो आते हैं !

[गोपू का प्रस्थान]

अमृत—कहीं जाइएगा नहीं ? बाँध कर रख लो जैसे पंछी की आत्मा हूँ। बँधूँगा जैसे टूटे पिंजड़े से पंछी बँध जाता है। जब मन में आया आकाश को !—मन भर गया पिंजड़े के अन्दर ! इच्छाओं में सभी बँधे हैं। फिर मैं बँधा तो क्या ?

[अमृत का प्रस्थान। स्टेज से गहरी नीली रोशनी हट जाती है और एक हल्की रोशनी छा जाती है]

[राय साहब और प्रमिला दूसरे दरवाजे से प्रवेश करते हैं]

राय साहब—(बैठते हुए) बैठो बेटी ! कल तुम लोग आधीरात आए इसलिए कुछ पूछ न सका ! तुम्हारा ही सहारा मेरे लिए अब शेष रह गया है। तुम्हारी माँ जब से गईं तब से बराबर ही परिवार की चिन्ता मुझे खाए जा रही है।

प्रमिला—(बैठती है) पिताजी ! अब ईश्वर की कृपा से घर का प्रत्येक व्यक्ति बड़ा और समझदार हो गया। आपके लिए चिन्ता की क्या बात ? हम सभी आपके हैं। हमें जो उठाने को कहें।

राय साहब—नहीं बेटी ! तुम्हें क्या उठाना है ? और इस घर में उठाने के लिए रह ही क्या गया है ? तुम्हें सुखी देख मेरी आत्मा संतुष्ट हो-यही ईश्वर से कामना है ! तुम सबकी उन्नति हमारी उन्नति है। हाँ, अपने घर के समाचार जरा विस्तार से सुनाओ। डाक्टर बसंत लन्दन में चीफ मेडिकल आफिसर हो रहे हैं। जानकर बेहद खुशी है।

प्रमिला—कोई साल भर के लिए होने वाले हैं मगर वहाँ उतने समय तक नहीं रह सकेंगे !

राय साहब—क्यों ?

प्रमिला—अकेले मन नहीं लगता ! फिर अपना देश उन्हें बहुत याद आता है । शायद जल्द ही लौट आएँ !

राय साहब—बहुत ही भावुक हैं ! इतनी अच्छी पोस्ट ! जल्दी किसी भारतीय को थोड़े ही मिल पाती है । विदेश में देश का नाम ऊँचा करें । इससे अच्छा अवसर दूसरा क्या होगा ? फिर देख-भाल के लिए तुम भी जा सकती हो ?

प्रमिला—मैं जाती ! किन्तु उनके ट्रेनिंग का पीरियड है । पोस्ट पर अच्छी तरह निभाना आवश्यक है। अकेला रहकर वे मिहनत अधिक कर सकेंगे । काम जिम्मेवारी का है । यही सोच नहीं गई ।

राय साहब—(हँसते हुए) वे जाते ही जाते घबड़ा गए । काम बड़ा देखा कि मुकर जाने की सोच ली । वे भी बच्चे हो रहे हैं ।

प्रमिला—वैसे काम से कभी घबड़ाते नहीं । यहा भी अठ्ठारह घंटे तक मरीजों में खड़ा रह जाना उनके लिए आसान बात थी । न जाने एक बार में कितनों को देख जाते ? लेकिन देश की बात है ।

राय साहब—(सिर हिलाते हुए) हाँ, हाँ, इसमें क्या सन्देह ? मिहनती न होते तो अकेला लाखों की कमाई कैसे हो पाती ? तुम्हारा परिवार बहुत ही प्रतिष्ठित है, प्रमिला । मैं बड़ा भाग्यवान था जो ऐसा घर बिना किसी तूल के मिल गया । तुम्हारे ससुर लाखों में एक हैं ! (कुछ सोचते हुए) मैं समझता हूँ डॉ० बसन्त के सब छोटे भाई उनके अनुरूप ही होंगे ।

प्रमिला—सब अच्छे स्वभाव के हैं । दो भाई अगले महीने ही एक साथ बंगलौर कम्पनी के सीनियर इंजिनियर होने वाले हैं । एक भाई सुप्रीमकोर्ट की वकालत में कल ही जीत कर आए हैं । सबसे छोटा भी बिजनेस में लग गया है ।

राय साहब—वाह ! तुमने खूब समाचार सुनाए ! एक दिन में इतने परिवर्तन ! लगता है वहाँ रोज ही उन्नति हो रही है । जो कल तक

जुनियर इंजिनियर थे—वे सीनियर हो गए। वकील साहब सुप्रीम कोर्ट का मुकदमा भी जीतने लगे और छोटा बिजनेस में आ गया। क्या कहने हैं ?

प्रमिला—सब बड़े मिलनसार हैं। आपस का प्रेम उनका इतना बढ़ गया है कि एक दूसरे के नाम से जायदादें खरीदने की होड़ लगाए हैं।

राय साहब—बेटी ! जहाँ विद्या है, प्रेम है, वहाँ सब कुछ है। अपने पूर्वजों की परम्परा पर चलनेवाले कभी नीची राह नहीं जा सकते। परम्परा एक सीढ़ी है जिस पर कदम रखनेवाले सदा ऊँचे ही उठेंगे। तुम्हारे परिवार में सब बड़े हुए ! जमाना चाहे कितना भी बुरा आया मगर तुम्हारे यहाँ की मर्यादा नहीं डिगी ! पीढ़ी की पीढ़ी तूफानों में भी अपनी शाखें फैलाए रही !

प्रमिला—पिताजी ! भाग्य का चक्र व्यक्ति में ही नहीं, परिवार और वंशावली में भी होता है। वही सब करता है।

राय साहब—मैं प्रशंसा करते नहीं थकता ! (कुछ सोचकर) मेरी आँखों में खुशी के आँसू आ जाते हैं जब मैं तुम्हारे परिवार के विषय में सोचता हूँ। भविष्य भी भगवान ने अच्छा ही बनाया है। उतना ही भव्य जितना अतीत ! यह डाक्टर वसंत का सबसे छोटा भाई जिसे लोग बेकार समझते थे—वह भी किनारे आ गया। (पूछते हुए) वह तो शायद बी० ए० नहीं कर सका था ?

प्रमिला—बी० ए० क्या मैट्रिक भी नहीं कर सके थे। केवल संगीत और नृत्य के पीछे सब होम कर बैठे थे। लोगों ने समझा नहीं पढ़ेंगे ! लेकिन घरवालों को चिन्तित नहीं होने दिया। कुछ देर के लिए वे भले ही व्यग्र हुए थे लेकिन वैसे ही जैसे सुबह का भूला।

राय साहब—(सिर खुजलाते हुए) संगीत और नृत्य की लत लगाने वाला बिजनेस में कैसे आया ? यह बड़ी बुरी बीमारी है।

प्रमिला—पहले फिल्म में चले गए। दो साल बम्बई में नाम कमाया। फिर दिल्ली में आकर सिनेमा हाउस स्टार्ट कर दिया। कोई सात-आठ लाख रुपए कमाए थे बम्बई में।

राय साहब—(आश्चर्य से) सात-आठ लाख !

प्रमिला—(उत्सुक होकर) क्यों कोई बड़ी रकम है ?

राय साहब—नहीं, सात-आठ लाख की रकम ही कितनी होती है ? लेकिन दो साल में ?

प्रमिला—दो साल में सात-आठ लाख क्या ? कमानेवालों ने करोड़ों तक कमाया है ! पहले आप ने ही········ !

राय साहब—(बीच ही में) नहीं बेटी। न दो साल की बात है और न सात-आठ लाख की। बात है नृत्य और संगीत की। कोई दूसरा व्यापार हो उसमें करोड़ों का कमाना आसान है। लेकिन इस लत में पेट भर भी कमाना दुर्लभ है।

प्रमिला—आर्ट में कमाना आजकल कठिन नहीं। फिर फिल्मों की बात ही छोड़िए। वह जनता की आर्ट है। वहाँ के आर्टिस्ट कभी भूखों नहीं मर सकते। उनके लिए लाखों की बात भी अब छोटी हो गई है। वहाँ जगह मिल पाना कठिन है। जान-पहचान और पहुँच न होने पर सपना मात्र ही समझिए। [धीरेन का प्रवेश]

राय साहब—आओ बेटा ! बड़ी देर लगा दी कपड़े ठीक करने में। तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

[स्टेज की रोशनी में परिवर्त्तन]

धीरेन—(प्रवेश करते हुए) क्या देर अधिक हो गई ?

प्रमिला—धीरेन भैया ! रात मैं भी तुम्हारे साथ आई थी ! लेकिन पहले ही तैयार हो गई हूँ। तुम्हारे जैसे आई० सी० एस० आफिसरों को और स्मार्ट होना चाहिए।

धीरेन—इसमें स्मार्ट न होने की क्या बात है ? कपड़े ठीक ढंग से पहनना स्मार्टनेस नहीं है क्या ? हमारे यहाँ यह सब भी देखा जाता है। (पूछते हुए) क्यों पिताजी ? (राय साहब चुप हैं)

प्रमिला—वाह ! बातें खूब बनाना जानते हो। साफ-साफ नहीं कहते देर हो गई ?

धीरेन—अच्छा माना देर हो गई ! लेकिन इतनी देर में आप लोगों ने ही क्या कर लिया ?

प्रमिला—हम अभी तमाम कलाओं की बातें कर रहे थे। इन्टलेक्चुएल टाक !

धीरेन—मैं नहीं मानने को। क्यों पिताजी ? (पूछता है) (राय साहब चौंक जाते है)

राय साहब—(चौंक कर) तुम दोनों लड़ रहे हो ? ऐसी बात क्या हो गई ?

धीरेन—पूछ रहा था अभी आप लोग कैसी वार्ता कर रहे थे ?

राय साहब—वार्ता ? यही प्रतिष्ठा और मान-सम्मान की बात !

धीरेन—क्या निकर्ष आया ? प्रतिष्ठा और मान-सम्मान में कोई अन्तर है ?

राय साहब—अन्तर क्या है बेटा ? दोनों ही लक्ष्मी की देन हैं। जिसके घर यह देवी उतरी उसे मान-सम्मान, प्रतिष्ठा, यश, सब आप ही सुलभ हो जाते हैं !

धीरेन—लेकिन लक्ष्मी का उतरना भी बड़ा कठिन होता है। यह ऐसी देवी हैं जो सब पर खुश ही नहीं होतीं !

राय साहब—सब पर खुश नहीं होतीं—यही तो महानता है देवी की। जो इनकी पूजा करता है, जो इनका भक्त है—उसी पर इनकी कृपा होती है। सब पर कृपा करने से भक्ति और आदर की भावना ही उठ जाएगी—संसार से। फिर पूजा, उपासना यह सब नहीं रह सकेंगे।

धीरेन—यह तो ठीक ही है ! आज भी सब पर कृपा नहीं है देवी की !

प्रमिला—कृपा के पात्र केवल वकील ! डाक्टर ! इंजिनियर, आई० सी० एस० आफिसर, बिजनेस-मैन या उद्योगपति ही हो सकते हैं। क्यों धीरेन भैया मैं ठीक कह रही हूँ ?

धीरेन—बेशक ! हमने सिद्धान्त की बात की और तुमने उसे उदाहृत कर डाला।

प्रमिला—लिटरेचर की एम० ए० हूँ। विचार और सिद्धान्त के क्षेत्र में उन्नीस नहीं हो सकती !

राय साहब—इन पेशों के अतिरिक्त और कोई राह नहीं हो सकती ? लक्ष्मी की कृपा से पूर्ण !

प्रमिला—और क्या हो सकती है ? वकालत की कोई सीमा नहीं। फीस की कोई रेखा नहीं ! एक-एक बहस के लिए दस हजार भी लिए जा सकते हैं और लाखों का सौदा भी हो सकता है—यह तो पार्टी की योग्यता पर निर्भर है।

धीरेन—पार्टी के बीच जम गए तो सारी रकम लाख ही है। कोई छोटा आदमी पास फटक ही नहीं सकता। यह गुडविल की बात है।

राय साहब—जहाँ गुडविल है वहाँ सीमा ही क्या ? पहले के जमाने में यह पेशा शाही और नवाबी दर्जे का था। अब भी स्कोप कम नहीं है लेकिन व्यक्तित्व चाहिए। ज़माने की चाल में व्यक्तित्व ही दबता जा रहा है। पहले के जितने भी रईस आज बचते आ रहे हैं उनमें अधिकतर का पेशा यही रहा है। कर्नल सुमेर सिंह वकील ही थे। विलायत पास ! जीवन में डेढ़-सौ बार विलायत गए होंगे। अब क्या जाएँगे लोग ? विलायत में उनकी अपनी ईमारतें हैं।

प्रमिला—अब सोचना पड़ता है जाने के लिए ! एक बार जो लौट आया, उसकी कदर देखते ही बनती है।

धीरेन—बिलकुल ठीक ! वैसे इंजिनियर और डाक्टरों का स्कोप भी बढ़ता जा रहा है।

प्रमिला—डाक्टरी भी आजादी की ही चीज है। दस रुपए भी फीस और पांच सौ भी। बड़े लोग एक विजिट के लिए पाँच सौ से कम देना अपना अपमान समझते हैं। उनका बँधा नियम होता है यह !

राय साहब—जिसके हाथ अच्छे हुए उसका क्या पूछना ? बड़े समाज के फेमिली डाक्टरों ने महीने में लाखों कमाए हैं। शहर बड़ा होना चाहिए फिर अच्छे हाथों की कमाई देखने ही काबिल है।

धीरेन—कुछ ऐसे समाज ही हैं जहाँ सौ से कम के सिक्के नहीं माने जाते। वहाँ एक छोटा-सा मिट्टी का घड़ा भी चार आने की जगह चालीस रुपए में बिक जाता है। अपना-अपना कस्टम है।

राय साहब—एक पुराना किस्सा सुनाता हूँ। दिलेरपुर के नवाब थे। उनके घर कोई उत्सव था जिसमें बाँस की टोकरी की जरूरत आ पड़ी थी। जब बाँस वाले ने चार आने दाम के साथ, एक रुपए का इनाम माँगा तब जैसे नवाब शर्मिन्दा हो गए। एक सौ का नोट उसके सामने रखवा दिया। तीस वर्ष भी तो नहीं हुए होंगे। इज्जत के लिए आदमी एक की जगह, सौ देता है। सबके मूल में यही है।

धीरेन—यही मूल इंजिनियरिंग की लाइन में बढ़ावा दे रहा है। डाक्टरों की तरह यह भी फ्री पेशा हो सकता है। देनेवाले तो महज मकान के नक्शे के लिए हजार-लाख तक दे डालते हैं। इंजिनियर अगर कन्ट्रैक्टर बन गया तो करोड़ों का वारा-न्यारा !

प्रमिला—स्कोप बड़े टाउन में ही वाइड होता है। जहाँ बीस-पचीस लाख की एक बिल्डिंग बनती हो, वहाँ पाँच लाख की फीस इंजिनियर के लिए स्वाभाविक है।

राय साहब—देने वालों की एक हाब्बी होती है। कुछ परम्परा के कारण ऐसा चलता है और कुछ प्रोत्साहन के लिए।

धीरेन—एक बात और है। ये देनेवाली पार्टियाँ खूब समझदार भी होती हैं। वे समझती हैं कि मेकिंग में इंजिनियर के क्या रोल होते हैं ?

राय साहब—इसमें क्या सन्देह ? कोई काम बेकार नहीं किया जाता। हर काम का अर्थ होता है।

प्रमिला—वैसे आई० सी० एस० पेशे में रुपए जरूर कम मिलते हैं, लेकिन शान-शौकत काफी है।

धीरेन—आई० सी० एस० कोई पेशा नहीं होता। वह एक सेवा है। उसमें रुपए पैसे की फ्रीडम कम है लेकिन इज्जत, प्रतिष्ठा, धाक और हुकूमत में उसका मुकाबला नहीं हो सकता।

प्रमिला—यों भी साल में बारह-अट्ठारह हजार मिल ही जाते हैं। पावर के मामले में डाक्टर, इंजिनियर की तुलना नहीं की जा सकती।

राय साहब—अब तो शाही और नवाबी रोब के बाद, आफिसर्स ही बच रहे हैं। शान, हुकूमत और मातहती धाक कहाँ मिलती है?

प्रमिला—आफिसर्स नहीं पिताजी! आई० सी० एस० आफिसर्स कहिए। आफिसर तो आज कल आई० सी० एस० से लौट आनेवाले भी हो रहे हैं।

धीरेन—हाँ, हाँ, वही मतलब है पिता जी का!

राय साहब—(रुककर) बिजनेस......बिजनेस......बिजनेस का स्कोप भी एक वाइड स्फेयर है..............यह प्रमिला के घर में, डाक्टर बसंत का छोटा भाई, बिजनेस-मैन ही तो कहा जाएगा?

प्रमिला—पूरे बिजनेस मैन! सिनेमा हाउस के प्रबन्ध का अर्थ आर्ट भी है। और बिजनेस स्वयं एक आर्ट है। वह सबको नहीं मालूम!

राय साहब—(अधिक चिन्तित हो जाते हैं) (मुट्ठी बाँध कर) सबको नहीं मालूम..............हाँ सबको नहीं मालूम..............नहीं तो इतनी चिन्ता क्यों? क्यों होती सबको परेशानी? (सिर खुजलाते हैं) कैसे, क्या करूँ?

धीरेन—(चौंककर) आप आवेश में क्यों आ रहे हैं?

प्रमिला—आपकी मुट्ठियाँ क्यों बँध गईं? क्या सोच रहे हैं पिताजी!

राय साहब—बड़ा अच्छा हुआ जो हमने बातों में ही हर चीज का स्कोप डिस्कस कर लिया। बहुत ही अच्छा हुआ!

धीरेन—क्यों क्या अच्छा हुआ?

प्रमिला—आखिर बात क्या है?

राय साहब—कुछ नहीं ! जिसके लिए तुम्हें एक साथ बुलवाया था—वह आप ही आप आरम्भ हो गया ।

धीरेन—हमने समझा नहीं ! क्या है वह ?

प्रमिला—हाँ, पिताजी ! हमें खुलकर बताइए ।

राय साहब—बताऊँ क्या बेटी ? यही अमृत के लिए कोई स्कोप खोज डालो तुम लोग, मैं थक गया !

प्रमिला—वह तो डिप्टीडायरेक्टर है ! क्या बुरा है ?

धीरेन—यह सीढ़ी है ऊपर चढ़ने की । एकाएक कोई ऊपर नहीं चढ़ जाता ?

राय साहब—वह भी कहाँ कर रहा है ? कल ही डायरेक्टर से लड़कर स्तीफा दे आया ?

प्रमिला—स्तीफा !

धीरेन—स्तीफा यानी त्यागपत्र ! अब समझे !

राय साहब—कह रहा था बॉस लोग जब साहित्य में हस्तक्षेप करने लगें तब नहीं रहना ही कुशल है । केवल अपने बॉस की आलोचनाएँ सुना रहा था । साहित्य कभी पढ़े नहीं ! बी० एस० सी० पढ़कर आई० सी० एस० कर गए ! और डायरेक्टर हुए तो एक ही साथ साहित्य, कला, अनुशासन सबके मर्मज्ञ हो गए । डायरेक्टर का काम है अनुशासन सम्हालना और कलाकारों-साहित्यिकों को केवल संकेत देना । दखल देना नहीं ! दखल कोई आसान काम नहीं है !

धीरेन—(बीच ही में) बॉस से ही लड़ गया तब स्तीफा जरूरी था !

प्रमिला—लेकिन कोई काम तो करना चाहिए ! आफिसरी में लड़ पड़ा ! कहाँ जाएगा ? लिटरेचर पढ़कर यों फ्री-लांसिंग कब तक की जा सकेगी ?

धीरेन—कमी क्या है ? घर बैठेगा !

राय साहब—कमी की बात नहीं है, धीरेन ! बात है आदत की ! मैं नहीं चाहता था, अमृत लिटरेचर पढ़े । इंजिनियरिंग या डाक्टरी पढ़ाने की मेरी इच्छा थी । लेकिन प्रमिला के साथ वह भी लिटरेचर ही

चाहता था। खैर, मैंने रोका नहीं! और रोकना भी नहीं चाहिए। इच्छा थी! ठीक है! लेकिन कोई अच्छा-सा काम तो करना चाहिए। पैसे के लिए नहीं, नाम के लिए। अपने वंश की प्रतिष्ठा के लिए। वकालत पढ़ने को कहा। लन्दन जाकर 'बार' करने को कहा। मगर सब बेकार। आई० सी० एस० में नहीं ही बैठा! केवल अपना हठ! मैं क्या करूँ? तुम सब ही समझाओ उसे!

प्रमिला—(आवेश में) बिजनेस में भी तो जा सकता है? क्यों नहीं जाता? मेरी देखा-देखी अगर लिटरेचर ही पढ़ना था तो इसका स्कोप भी क्या कम है? केवल आदमी की जरुरत है?

राय साहब—बेटी तुम्हें किसी बड़े डाक्टर के घर जाना था। तुमने पढ़ा तो ठीक ही पढ़ा। व्यवहार, बात-चीत सीख गई। लेकिन उसे किसी के घर जाना नहीं है। उससे समाज उसके पिता के अधिकार पूछेगा? उसके वंश की प्रतिष्ठा के विषय में पूछेगा? क्या उत्तर होगा—इन सब प्रश्नों का?

प्रमिला—(क्रोध में) गोपू! ऐ गोपू!! [गोपू का प्रवेश]

[स्टेज की रोशनी में परिवर्तन]

गोपू—क्या हुकुम है?

प्रमिला—जरा अमृत को भेजो। क्या कर रहा है अबतक?

धीरेन—हाँ भाई जरा जल्दी भेजो! सोया हो तो जगा देना। यहाँ चाय ठंढी हो रही है। उसके बिना तबीयत ही नहीं लगती।

प्रमिला—(आवेश में) तुमने भी उसे बिगाड़ा है। भैया का दुलार दे-देकर सह दे रखा है। पिताजी को तंग करते शर्म नहीं आती उसे।

धीरेन—आ जाएगा रास्ते पर, नवयुवक पहले ऐसे ही होते हैं।

गोपू—छोटे बाबू खुद ही आ रहे हैं। [गोपू का प्रस्थान] [अमृत का प्रवेश]

[स्टेज की रोशनी में परिवर्तन]

अमृत—मुझे बुलवाने की क्या जरूरत है? मैं तो आ ही गया?

प्रमिला— (क्रोध में) क्यों नहीं जरूरत है बुलाने की ? आखिर कब तक सीखोगे ढंग ?

अमृत—कैसे ढंग दीदी जी ? आपके या धीरू भैया के ? हमेशा नाक पर टोकरी बाँधना—ऐसा भी कोई ढंग होता है ?

प्रमिला—बातें करने की तमीज नहीं। इतने बड़े हो गए—और लिटरेचर के एम० ए० हैं। कपड़ा फटा क्या पहन रखा है जैसे राय साहब के घर यही तो पहना जाता रहा है ?

अमृत—पैसे बचा रहा हूँ। आर्थिक बचत का बजट क्या रहा साहब के घर नहीं बनता ? तुम्हारे घर न हो इसका रिवाज। मगर हमारे घर हर काम योजना के अनुकूल होता है। सिद्धान्त के अनुसार होता है। तुम्हारे घर में सिद्धान्त की भले ही पूछ नहीं। हमारे यहाँ होती है।

प्रमिला—चलो, चलो। बड़े बने हो घरवाले। घर रखने के लिए योग्यता, चाहिए, घर बनाने के लिए बुद्धि चाहिए और घर बसाने के लिए कला चाहिए। ऐसे ही नहीं होता घर !

अमृत—घर तो पका-पकाया मिलता है। मुझको इतना बड़ा राय साहब का घर मिल गया है। आपको दिल्ली में बड़ी-सी ईमारत मिल गई है। किस बुद्धि पर और किस योग्यता पर ? जरा सोच समझ कर बोलिएगा बड़ी बहन जी !

प्रमिला—इसीलिए सिर चढ़कर बोलते हो। पका-पकाया मिल गया, अपने मन के हो गए। न विचार, न चिन्तन !

अमृत—(उसी हँसी के स्वर में) अपना काम है हजम करना। पका-पकाया मिल गया तो डकारनेवाले को अपने मन का कौन कह सकता है ? हजम करनेवाला खूब चिन्तन और विचार से हजम करता है ?

प्रमिला—(उसी क्रोध में) कर जाओ हजम ! सब कर जाओ हजम ! घर की इज्जत, मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा कुछ भी न छोड़ो। सब निगल जाओ।

अमृत—दीदी ! (चुप हो जाता है और आश्चर्य से देखने लगता है—प्रमिला की ओर)

धीरेन—(डाँटकर) चुप रहो प्रमिला। ऐसी बातें भला कहीं जाती हैं ? अमृत लड़का नहीं है। बड़ी हो—इसका मतलब यह नहीं जो जी में आए, बकती जाओ।

राय साहब—(झुका सिर उठाकर) हाँ, बेटी! आवेश से काम नहीं करते! तुम सभी बड़े हो! एक दूसरे को समझ-समझा सकते हो!

[प्रमिला का आवेश ठंडा पड़ जाता है, वह चुप हो जाती है। एक गहरा मौन छा जाता है। अमृत टहलता है और कुछ देर टहलकर मौन भंग करता है।]

अमृत—मैं जानता था किस लिए दीदी और भैया का आना हुआ है ? मैं जानता था यह अदालत जरूर बैठेगी! मुझे कुछ दुःख नहीं! मैं कोई अपराधी नहीं हूँ!

धीरेन—अपराध की बात नहीं है अमृत! हम तो केवल तुम्हारे स्कोप के विषय में डिस्कस करना चाहते थे। बुरा मानते हो ?

अमृत—बुरा मानना क्या ? हर चीज डिस्कस की जा सकती है फिर स्कोप तो एक व्यापक विषय है ?

धीरेन—तुम आई० सी० एस० में क्यों नहीं बैठते ? तुम्हारी समझ में उसका स्कोप नहीं है ?

अमृत—क्यों नहीं ? मैंने कब कहा स्कोप नहीं है ?

धीरेन—फिर बैठते क्यों नहीं ?

अमृत—उधर मेरी इच्छा नहीं है जाने की। इसलिए नहीं बैठता।

धीरेन—फिर 'बार' के लिए लन्दन जाने में क्या एतराज है आपको ?

अमृत—बस यही कि तबीयत नहीं है ?

धीरेन—तबीयत आखिर किसके लिए है ?

अमृत—जिसके लिए है, उसकी ओर जाने की मनाही है और जिधर नहीं जाना चाहता उसकी ओर बराबर खींचा जा रहा है।

धीरेन—हाँ, साफ-साफ कहिए! साहित्य और कला को आप साइड की चीज न मान कर मेन मानते हैं ? क्यों ?

अमृत—बिलकुल ठीक ! अन्तर इतना ही है कि आप जिसे साइड की चीज समझते हैं, उसे मैं प्रधान मानता हूँ। जिसे आप प्रधान समझते हैं, उसे मैं साइड की चीज समझता हूँ। और मेन के लिए साइड में परिवर्तन होते ही हैं। आप आई० सी० एस० के लिए कला को छोड़ सकते हैं और मैं कला के लिए आई० सी० एस० छोड़ सकता हूँ ! आप नौकरी के लिए साहित्य छोड़ सकते हैं और मैं साहित्य के लिए नौकरी छोड़ सकता हूँ !

धीरेन—जी हाँ, इसीलिए नौकरी आपने छोड़ दी !

अमृत—आपमें और मुझमें अन्तर केवल विषय का है। यों आदत और स्वभाव एक ही हैं। प्रवृत्तियाँ भी वहीं हैं।

धीरेन—बेशक ! आपके विचार बहुत सुलझे हुए हैं। अच्छा यह बताइए मिस्टर अमृत ! (कुछ सोचकर) आपकी 'मेन एक्टिविटिज' यानी आपके प्रमुख उद्देश्य में क्या-क्या आते हैं ? कोई पेशा तो अपनाना ही पड़ेगा ?

अमृत—जी हाँ, आपके प्रश्न अत्यन्त सुन्दर हैं। मेरे उद्देश्य और पेशे के अन्तर्गत आते हैं साहित्य, कला और दर्शन।

धीरेन—(बीच ही में) नहीं, मेरा मतलब था कि आप साहित्य के बाद क्या करेंगे ?

अमृत—चित्रकारी सीखूँगा !

धीरेन—चित्रकारी सीखने के बाद क्या करेंगे ?

अमृत—नृत्य सीखूँगा !

धीरेन—नृत्य सीखने के बाद क्या करेंगे ?

अमृत—संगीत सीखूँगा !

धीरेन—अर्थात आपके 'लाइफ' में नहीं आना चाहते ! संसार से अलग रहना चाहते हैं क्यों ?

अमृत—हरगिज नहीं ! यह सारी चीजें 'लाइफ' के अन्दर हैं ! बाहर नहीं ! संसार के ही अन्दर हैं !

धीरेन—आपने मेरा मतलब अभी भी नहीं समझा। मान लीजिए आपको आत्म-निर्भर होना है। तब आप रोजी-रोटी के लिए कौन-सी राह अपनाएगें ?

अमृत—रोजी-रोटी के लिए आदमी वह लेखक भी बन सकता है जिसकी चीजें लोग कम पढ़ते हों। वह नाटककार भी बन सकना है जिसके नाटक लोग मुफ्त ही खेला करते हों। वह कवि भी बन सकता है जिसकी कविताएँ लोग न समझकर उनसे चूल्हे जलाने का काम लेते हों।

धीरेन—लेखक कहिए ! साहित्यकार कहिए ! लेकिन इससे पेट भर की कमाई हो सकती है ?

अमृत—अगर इससे न काम चले तो पेट भरने के लिए मास्टरी भी की जा सकती है ?

धीरेन—लेकिन हमारे खानदान में न तो कोई लेखक हुआ. और न कोई मास्टर ! फिर आप क्यों होना चाहते हैं ?

अमृत—बस इसीलिए कि हमारे खानदान में ऐसा कोई नहीं हुआ !

धीरेन—हमारे खानदान में कोई वकील, डाक्टर, इंजिनियर, आफिसर या बिजनेस मैन से कम नहीं हुआ।

अमृत—तो आप क्या लेखकों का मूल्य इनसे कम लगाते हैं ?

प्रमिला—(उत्तेजित होकर) जी हाँ ! इनका मूल्य हजारों, लाखों और करोड़ों का होता है। लेखकों या कलाकारों का, जिनकी चीजें लोग कम समझते हैं, पेट निबाहने भर का भी मूल्य नहीं होता। दोनों में काफी अन्तर है !

अमृत—हो सकता है ? इनका मूल्य हजारों, लाखों या करोड़ों का हो ? मगर लेखकों या कलाकारों का मूल्य न तो हजार है ! न लाख ! न करोड़ ! उनके मूल्य की कोई सीमा नहीं। कोई आँकड़ा भी नहीं। इसलिए उन्हें अमूल्य कहा गया है ! आपके बिचार क्या हैं ?

प्रमिला—तो फिर हमारे समाज में ये लेखक और कलाकार मारे क्यों फिरते हैं? उन्हें पेट भरने की जगह क्यों नहीं मिलती? क्यों वे गरीबी और फटेहाली का जीवन बसर करते हैं?

अमृत—इसलिए कि समाज उन्हें देता नहीं!

प्रमिला—क्यों नहीं देता? वे देने के योग्य नहीं! उनका मूल्य नहीं!

अमृत—जी नहीं! इसलिए कि देने के लिए समाज के पास उतना है ही नहीं! उनका मूल्य चुकाना समाज की शक्ति के बाहर है!

प्रमिला—बेकारों को आप अमूल्य समझते हैं? आप यह नहीं कह सकते कि वे समाज में 'फिट' नहीं करते इसलिए बेकार हैं।

अमृत—ऐसा भी हो सकता है कि समाज ही उनमें 'फिट' नहीं करता हो।

प्रमिला—मैं ऐसे दृष्टान्त दे सकती हूँ! जब लेखक समाज में 'फिट' नहीं बैठे हैं तब दाने-दाने के मुहताज रहे हैं। मगर जब समाज में 'फिट' बैठ गए हैं तब लाखों की कमाई कर गए हैं।

अमृत—ठीक है! आपके दृष्टान्त सही हो सकते हैं। मगर यह भी हो सकता है कि जब समाज लेखक में 'फिट' नहीं बैठा हो तब गलत रास्ते पर चला हो। लेकिन जब 'फिट' बैठ गया हो तब सही रास्ते पर आ गया हो।

प्रमिला—(मुट्ठी पटककर) यह आपको नहीं भूलना चाहिए कि समाज लेखक को बनाता है।

अमृत—(मुट्ठी पटककर) यह आपको भी नहीं भूलना चाहिए कि लेखक समाज को उठाता है।

धीरेन—इस विवाद का अन्त नहीं हो सकता। हम गलत आधार पर आ गए हैं। बात किसी के न बड़े होने की है, न छोटे होने की! न किसी के अधिक होने की है न कम होने की। मतलब यह है कि हमें राय करनी है मिस्टर अमृत के आगामी कार्यक्रम के विषय में!

राय साहब—राय समझदारी से होती है। उत्तेजना से नहीं! उत्तेजना में कभी-कभी खाई भी रास्ता मालूम होती है। हमें हर चीज समीप से

देखनी है। यों तो आकाश दूर से देखने में ठोस मालूम पड़ता है लेकिन समीप से देखने में वह खोखला है। तारीफ पहचान की है!

[चुप हो जाते हैं। एक सन्नाटा-सा थोड़ी देर के लिए छा जाता है। सब राय साहब की ओर देखते हैं।]

राय साहब--मूल्य और प्रतिष्ठा की कसौटी समाज है। मनुष्य समाज का एक अंग है। उसकी पहचान समाज के द्वारा होती है। मैं गलत नहीं कहता! यह सभी देखते हैं! जानते हैं! आज समाज उनका आदर करता है जिनके पास बड़ी-बड़ी ईमारतें हैं! जिनके पास बड़ी-बड़ी कारें हैं! जिनके पास बड़ी-बड़ी सम्पत्तियाँ हैं! सम्पत्ति से दूर रहना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। निर्धनता जीवन का उद्देश्य नहीं बन सकती। लाचारी हो सकती है! कायरता हो सकती है!

अमृत—(कुछ आवेश में) ठीक है! इसका विरोध नहीं किया जा सकता। निर्धनता उद्देश्य नहीं हो सकती है। लेकिन................

राय साहब—लेकिन क्या?

अमृत—(उसी आवेश में)—एक लेखक या कलाकार जिसे समाज समझ नहीं पाता, वह कहाँ से बना सकेगा ईमारतें? कहाँ से ला सकता है कारें? जब समाज नहीं देता तब सम्पत्तियाँ कहाँ से आ सकती हैं? आसमान से नहीं टपक सकतीं?

राय साहब—जहाँ चाह होती है वहाँ राह आप ही बन जाती है। कलाकार चाहे तो बड़ी-बड़ी सम्पत्तियाँ रखना कोई कठिन काम नहीं!

अमृत—यह कैसे?

राय साहब—जैसे प्रमिला के घर में डॉ० वसन्त का छोटा भाई! वह भी कलाकार था! संगीत और नृत्य का जानकार! लाखों की कमाई की है उसने!

अमृत—संगीत, नृत्य और लाखों की कमाई?

प्रमिला—जी हाँ! संगीत, नृत्य और लाखों की कमाई! फिल्में आप देखते हैं। उनमें संगीत, नृत्य नहीं रहते क्या?

अमृत—(चौंककर) आपका मतलब यह कि कलाकार फिल्म के जरिए लाखों कमा सकता है! कहना बिलकुल ठीक है! मगर यह फिल्में सबको नहीं समेट सकतीं! सभी लेखक वहाँ जा भी नहीं सकते!

प्रमिला—लेकिन आप जा सकते हैं! आपके लिए वहाँ जगह बनाई जा सकती है! ढाई हजार महीने का प्रबन्ध हो सकता है! फिर आप तो कलाकार के साथ लेखक भी हैं!

अमृत—(आश्चर्य से) मैं! आप मुझे कहती हैं?

प्रमिला—चौंक क्यों उठे? ढाई हजार के नाम से?

अमृत—जी नहीं! ढाई हजार के नाम से नहीं। चौंक उठा इसलिए कि कहाँ मैं और कहाँ फिल्म? दोनों के सम्बन्ध पर!

प्रमिला—क्यों यह असम्भव है? या आप जाना नहीं चाहते?

अमृत—दोनों ही बातें हैं! मैं ज्यादा लोगों के लिए लिख ही नहीं पाता। यही मजबूरी है!

प्रमिला—क्यों पॉपुलर होना अच्छा नहीं?

अमृत—पॉपुलर होना अच्छा क्यों नहीं? मगर ऐसा भी होता है कि जो पॉपुलर है वह अच्छा नहीं और जो अच्छा है वह पॉपुलर नहीं!

प्रमिला—आप पॉपुलर नहीं हो सकते?

अमृत—(उसाँस लेकर)—हाँ। मैं अच्छा हो सकता हूँ! बुरा हो सकता हूँ। मगर पॉपुलर नहीं हो सकता!

प्रमिला—आप वह नहीं कर सकते जो ज्यादा लोग चाहते हैं?

अमृत—मैं केवल वही कर सकता हूँ जो मैं स्वयं चाहता हूँ! एक कलाकार या लेखक के लिए अपने चाहने के प्रतिकूल कुछ करना भी सम्भव नहीं! वह जो चाहता है, वही करता है। इसीलिए वह स्वतन्त्र है।

प्रमिला—मतलब आप अपने मन की करेंगे। वंश में जो परम्परा से होती रही है उसे आप नहीं चाहेंगे! सबके रास्ते को आप एक अकेला ही छोड़ेंगे!

अमृत—सबने किया। अगर एकने नहीं किया तो क्या? एक से होता ही क्या है?

प्रमिला—(आवेश में) एक ही आग सारे समूह को जला सकती है! और समझिए मिस्टर अमृत! यह आपकी चाह नहीं है। वह आग है जो एक दिन आपको जलाएगी! यदि आगे बढ़ी तो राय साहब के समूचे खानदान को जला कर राख कर देगी! समझे!

अमृत—(आवेश और दुःख भरा स्वर) समझता हूँ! अगर आग हूँ तो खुद जलूँगा! इससे दूसरों को चिन्ता क्यों? हाँ, राय साहब का घर जला तो आपको चिन्ता हो सकती है! औरों को भी चिन्ता हो सकती है! किन्तु यह राय साहब का घर है क्या? मेरी नहीं केवल आपकी विचार-धाराएँ! राय साहब का घर अर्थात आपकी विचार-धाराएँ! आपकी विचार-धाराएँ अर्थात जली हुई गाँठें! आग से सब कुछ जल सकता है मगर जली हुई गाठें नहीं जल सकतीं! फिर भय क्यों? चिन्ता क्यों? (आवेश बढ़ जाता है) मैं जानता हूँ! जानता हूँ कि मेरी धारणाएँ आग हैं लेकिन वह आग नहीं जो दूसरों को जलाती है! मेरी विचार-धाराएँ आरती की आग हैं! पूजा की आग हैं! उपासना की लपट हैं! मैं खूब समझता हूँ!

प्रमिला—(क्रोध से) यह तो हमारा अपमान हो रहा है!

राय साहब—(दुखी होकर) तुम हमसे इतनी घृणा क्यों करते हो अमृत?

धीरेन—(प्रश्न करते हुए) इतनी कड़ुवी बातें क्यों कह रहे हो?

अमृत—मैं आपका अपमान नहीं करता! मैं आपसे घृणा नहीं करता! मैं कड़ुवी बातें नहीं कह रहा हूँ! मेरे हृदय में आपके लिए अटूट सम्मान है, किन्तु मैं आपके विचारों को सम्मानित नहीं कर सकता! मुझे आपके प्रति बेहद प्रेम है, किन्तु मैं आपके सिद्धान्तों को नहीं प्यार कर सकता! मुझे क्षमा करें! मैं झूठ नहीं कहता! चाहकर भी मैं झूठ नहीं बोल सकता! मैं विवश हूँ! मैं सत्य छोड़ कर कुछ नहीं कह सकता! और सत्य कड़ुवा है! मुझे क्षमा कर दें!

प्रमिला—(क्रोध से) एटिकेट भी कोई चीज है !

अमृत – (स्वर और भी दुःखमय हो जाता है) (उसाँस भरते हुए) अगर सत्य नहीं कहना ही एटिकेट है ! मन को खोल कर नहीं रख देना ही एटिकेट है ! चुपचाप झूठ उगल देना ही एटिकेट है ! तो मैं असमर्थ हूँ..........निस्सहाय हूँ..........दुर्बल हूँ..........दया का पात्र हूँ । और वह सब कुछ हूँ जो एक निरीह व्यक्ति में होता है !

(थोड़ी देर चुप रहता है फिर स्वर शिथिल हो जाता है)..........मैं किसी की राह में नहीं आना चाहता..........किन्तु लोग मुझे राह का काँटा समझते है..........मैं अपनी आत्मा की हत्या नहीं करना चाहता ....किन्तु लोग मुझे कायर समझते हैं..........मैं किसी का विरोध नहीं करना चाहता..........किन्तु लोग मुझसे सावधान रहते हैं.......... मैं अपनी राह नहीं रोकूँगा..........मैं अपने सिद्धान्त नहीं बेचूँगा.......... मैं सबसे दूर रहूँगा..........उतनी दूर जहाँ तक किसी की आवाज भी न पहुँच सके..........जहाँ से मेरी काली छाया किसी को न छू सके.......... मैं अपना विष अपने में सँजोकर रखूँगा..........जिससे बाहर का विष मुझे न छू सके..........!

अपने हाथों से आँखें ढँक लेता है और कमरे के बाहर हो जाता है। स्टेज पर काली रोशनी घिर जाती है। धीरेन गम्भीर होकर सोचने लगता है। प्रमिला अपनी आँखों पर रूमाल रख देती है और राय साहब सिर थामकर बैठ जाते हैं।

(पर्दा गिरता है)

शहर जिन्दा है

शहर की छाती चीरती हुई रेलवे-लाइन चली गई है। एक छोर दिल्ली की ओर, दूसरा कलकत्ते की ओर। दिन में आने और जानेवाली गाड़ियों को कौन गिने? पंजाब मेल आती है, धड़धड़ाती हुई निकल जाती है। मालगाड़ी पिट-पिट करती हुई दो-एक सीटियाँ मार खिसक जाती है। शटल कुछ देर ठहरता है, चीखता है फिर सों-सों करता हुआ डुबकी खींच लेता है। लाइन की पटरियाँ पड़ी-पड़ी देखा करती हैं। दो बजे दिन में कोई मेल से कट गया है। लाश पटरी के किनारे पड़ी है। खून के धब्बे फैले-फैले सूख रहे हैं। ज्यादा नहीं दो-चार मक्खियाँ भिनभिना रही हैं और कुछ गज की दूरी पर दो कुत्ते मुँह लपलपाए बैठकर हाँफ रहे हैं। पुलिस के चार सिपाही लाश को घेरकर खड़े हैं। लाश किसी नवयुवक की है। महीनों बेकार रहने के कारण खुदकशी कर गया। पास ही खड़ी भीड़ के लोग काना-फूसी कर रहे हैं। युवक खुद नहीं मरा, किसी ने मारकर फेंक दिया है। शायद किसी से गुप्त प्रेम करता था और प्रेम के गुनाह में यही सजा मिलती है। राज छिपा-छिपा-सा है। अगले महीने जरूर ही इस हत्याकाण्ड पर विस्तार के साथ प्रकाश पड़ेगा।

दैनिक पत्र के कार्यालय के सामने पुलिस का पहरा है। पचास आदमी सफेद, काले और नीले बैनर हाथ में लिए खड़े हैं और ठहर-ठहरकर नारा लगाते हैं, 'रोजी, रोटी, कपड़ा दो।' दैनिक पत्र एकाएक कल से ही छपना बन्द हो गया है। प्रेस के कर्मचारी हड़ताल पर हैं और मालिक समझौते के लिए दौड़-धूप कर रहे हैं। कर्मचारियों में सम्पादक लोग भी हैं और सम्पादकों में जो सबसे दुबला-पतला है वह भूख-

सत्याग्रह कर रहा है। चालीस घन्टे से प्रेस के दरवाजे पर सो रहा है। हालत जल्दी-जल्दी बिगड़ती जा रही है। मित्र और साथी घेरकर खड़े हैं। सबके चेहरे पर एक काली-सी छाया घिर रही है। शहर के कुछ लोग जब-तब तमाशा देखने के लिए भीड़ लगा देते हैं। उन्हें आश्चर्य होता है कि यह छोटा-सा रत्ती भर का आदमी मौत को कैसे चुनौती दे रहा है? वजन तीस सेर, कद पाँच फुट और चला है भूख हड़ताल करने! मगर अपने को कितना साध रहा है? दधिचि की हड्डियाँ हैं उसके शरीर में और आदमी के भीतर केवल हाड़-मांस ही नहीं है, हिम्मत की दरिया भी बहती है। रोजी-रोटी के लिए आदमी सब कुछ कर सकता है। साढ़े तीन हाथ की देह में सागर जैसा पेट मिला है और पेट के चलते आदमी मुँह में काँटे दबा सकता है, शीशे खा सकता है और आँख में सूई छिपा सकता है। मगर पेट तो सब के पास है। क्या राजा, क्या फकीर? तब आदमी अपने अधिकारों के लिए लड़ता है और लड़ने में तकलीफ होती ही है।

फ्रेजर रोड से सेठ मदनलाल जालान की सफेद और काले रंगोंवाली चितकबरी कार सरसराती हुई गुजर गई। सेठ मदनलाल नहीं थे उनका बेकारी करनेवाला छोटा लड़का किसुन था। लेडी डाक्टर मिस शेटिन के साथ शायद वह अशोक जा रहा था, कोई अंग्रेजी फिल्म आज चार दिनों से चल रही है। किसुन का एक हाथ कार की हैंण्डिल पर और दूसरा शेटिन के कन्धों पर था। मिस शेटिन को यह क्या हो गया है? शाम के कुहासे में गोगेल्स लगाती हैं और दिसम्बर के कड़े जाड़े में भी शरीर का आधा भाग खुला रखती हैं। फिर सर्दी लग जाने का भय तो छाती के लिए ही ज्यादा होता है? यह किसुन भी किस्मत का साँड़ है; पैदा हुआ तो सेठ मदनलाल के घर। किसी मजदूर के घर पैदा होता तो बोरा ढोते-ढोते जान निकल जाती और किसी धोबी के घर जन्म लेता तो गदहा हाँकते-हाँकते बच्चू की नानी मर जाती! मदनलाल की कमाई खूब उड़ा रहा है। रोमांस कभी एक लड़की से नहीं करता—लड़कियों के दिल

अलग-अलग होते हैं, उनके प्यार करने के ढंग भी अलग-अलग होते हैं। किसुन तो उसी दुनिया का निवासी है जो पैदाइश के अनुसार बंटवारा करती है। फिर इसमें चुगली खाने की क्या बात? खानेवाले खाएँ-किसुन मिसेज शेटिन के साथ अंग्रेजी फिल्मों की नाज देख रहा है—"दी बेदिंग ब्यूटी।" देखनेवालों की आँखें हमेशा आगे होती हैं, पीछे नहीं! पीछे की आँखें शैतान को मिलती हैं।

एलफिन्सटन का फस्ट शो खतम ही हुआ था कि लोदीपुर के घाटुर साव के यहाँ डकैती हो गई। बारह हजार के गहने और पूरे पन्चान्बे सौ का नगद माल चला गया। डाकू जीपगाड़ी पर आए थे—शादी की बात-चीत करने। घाटुर साव ने बेटे के लिए तीस हजार तिलक क्या माँगा, साक्षात मौत को ही बुला लिया। खुद भी गए और बेटे के हाथ-पैर लेते गए। बिचारा अस्पताल में पड़ा है। फरसे का घाव मामूली नहीं होता। किसी तरह जी जाए—यही गनीमत है। साव ने कंजूसी से बड़ा बटोरा था। अगर यह भी न रहा तो सारी कमाई लावारिस हो जाएगी। साव हिसाबी भी होगा। दो आटे की चक्कियों से इतनी कमाई बचा लेना, साधारण काम नहीं। मिट्टी के घड़े में तेल डालकर गहने छिपाया करता था। कभी मिट्टी के घड़े ऊपर नहीं रहे, हमेशा दीवार या आँगन की जमीन में पाँच गज नीचे। तारीफ यह कि घड़े गाड़कर उन पर सीमेन्ट का प्लास्टर भी करा देता था। सौ के नोट तक न बचे--प्लास्टर के बीच में वर्षों पड़े रहे। चार तल्ले का मकान बनवाया था। हजारों रुपए सूद पर लगा रखे थे। मगर जलनेवाले कहते हैं घाटुर अपने साथ इन सबों को क्यों नहीं लेता गया? "ना घर मेरा, ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा है।"—बकनेवाले बक गए। घाटुर को एक ही गोली लगी कलेजे में। अगर डाकुओं को नहीं पहचानता तो वे उसे छोड़ देते, मगर उनका नाम ले-लेकर पुकारने लगा। कातिल को भी डर होता है। आखिर उन्हें भी तो कोई मार सकता था? ठहरे तो दो हाथ वाले जीव ही, न! घबड़ा गए! कहते हैं दूसरों को लूटनेवाले धीरज नहीं रखते। दिमाग का संतुलन

खो देते हैं और बचे-खुचे ईमान को, किसी बड़े चलते बाजार की दुकानों जैसा किराए पर लगा डालते हैं।

कदमकुआँ के रेंजर्सक्लब की रोशनी एक बजे रात तक जली रहती है। 'बाल डान्स', 'रॉक-रॉक-रॉक' या फिर उसे जो कह लीजिए, रोशनी गुल होने तक चलती रहती है। कितना मजा है इस डान्स में? कोई किसी के साथ नाच सकता है। मिस्टर सेठी (जिनकी ऊँचाई ५ फुट साढ़े सात इंच है) मिसेज शर्मा के साथ (जिनकी ऊँचाई चार फिट साढ़े सात इंच है) एक गज की दूरी नापते हुए खुशी से नाचते हैं। मोटे-पतले की चिन्ता नहीं। गोरी-साँवली का भेद नहीं। समदर्शी होते हैं ये क्लब के सदस्य? डान्स में सभी साफ दिलवाले होते हैं। मगर ये डान्स के प्रेमी कभी-कभी मन-मौजी भी हो जाते हैं। नहीं तो मिस्टर दास और मिस्टर जोशी में मार-पीट की नौबत क्यों आती? कुर्सी चल गई, दास का सिर फूटा और जोशी की नाक लहू लुहान हो गई। मन-मौजी में मिसेज जोशी के लिए। मिसेज जोशी बीचवाले कमरे में अकेली खड़ी थीं और मिस्टर दास ने उन्हें जरा-सा छू भर दिया। जोशी ने उसी क्षण कहीं से देख लिया। शंका हो गई। इल्जाम लगा उठे मिस्टर दास पर 'मिस बिहेवियर' का। दूध का धोया दास कब चुप रहते? झूठे कलंक पर अगर गुस्सा न आए तो सच्चा क्या? चीफ इंजिनियर और कमिश्नर में भिड़न्त हो गई। मिसेज जोशी ने लाख मना किया, समझाया मगर मिस्टर जोशी का गुस्सा दूर न हुआ। सारा काण्ड समाप्त हुआ जब मामला हाइकोर्ट में जाते-जाते रुक गया। अब दोनों में मेल हो गया है। मस्ती की खुमारी में दो-क्षण बहक गए थे? मिसेज.जोशी, दास के गले में बाँहें डाल घूमती हैं और दास की बेटी ललिता (कालेज गर्ल) की कमर में मिस्टर जोशी हाथ लपेट टहला करते हैं। कॉमप्रमाइज पर चारो ओर से बधाइयाँ मिल रही हैं उन्हें? दोस्त हों तो ऐसे। जैसे लड़े, वैसे मिल गए। नाजुक हैं। आलमोनियम की केटली जितनी जल्द गर्म होती है, उतनी ही जल्द ठंढी भी हो जाती है।

मिसेज त्रिपाठी के यहाँ साहित्यिक गोष्ठी समाप्त हो गई। चार बजे शाम से ही चल रही थी। गोष्ठी में शहर के पापुलर कवि मौजूद थे। कवियों के अलावा और कोई साहित्यिक नहीं होता। कविता की बराबरी कहानियाँ, आलोचनाएँ और लघुकथाएँ नहीं कर सकतीं! नाटक तो रंगमंच के लिए है, गोष्ठियों के लिए नहीं। साहित्य की पुरानी परम्परा का खयाल रखते हुए ही ऐसी गोष्ठियाँ मिसेज त्रिपाठी बुलाती हैं। ये पापुलर कवि भी कैसे सौन्दर्य और स्वतन्त्रता-प्रेमी हैं? मिसेज त्रिपाठी की लीविंग स्टाइल उन्हें बेहद पसन्द है। कविताएँ पाँच के बाद पाँच होती जाती हैं और कवि-श्रोता कान से कविताएँ सुनते हैं——आँख से मिसेज त्रिपाठी का रूप निहारते हैं। यह शेक्सपियर का हीरो सीजर जो था—कहते हैं एक साथ आठ काम करता था, हमारे पापुलर कवि तो केवल तीन ही चार करते हैं। मिसेज त्रिपाठी इन नजरों का बुरा नहीं मानतीं। आँखें हैं तो देखने के ही लिए। कभी-कभी यह जो बूढ़े पापुलर कवि हास्य-रसावतार 'गर्क' जी हैं, न, इनकी ही नजर बेढंगी हो जाती है। 'गर्क' जी पल भर में ही एक आँख मूँद उनसे इशारे में कह देते हैं——"देवी जी आप साक्षात प्रेरणा हैं——कवि आपको कैसे भूले? आप साक्षात कविता हैं, कवि आपको क्यों न पढ़े?" और मिसेज त्रिपाठी का गुस्सा, खीझ के साथ-साथ पिघलकर बर्फ का ठंडा पानी हो जाता है। प्रेरणा गेटे का निर्माण करती है, कविता तुलसी को जिन्दा रखती है। इस गोष्ठी की खबर शहर के हर अखबारों में छपती है। छपने में दिक्कत नहीं होती क्योंकि कवियों में ज्यादातर अखबारों के दफ्तर से भी आते हैं। श्रेय, मिसेज त्रिपाठी को कम-से-कम हफ्ते में एक बार जरूर मिल जाता है। शहर में उनकी शोहरत फैलती है।

यह 'गर्क' भी अखबारी आदमी हैं। राजनीति, समाज, अर्थशास्त्र, पत्रकारिता, संगीत, चित्रकारी, फिल्म सभी विषयों पर बहस कर सकते हैं। जानकारी रखते हैं——पत्रकार हैं। अपनी बड़ाई करते नहीं थकते। अपने गुणों को खोलकर बाहर रख देते हैं ताकि दुनिया को गलतफहमी न हो

जाए । कोई उसे भटका न दे । इसे सच्ची राह पर ले आने की कोशिश करते हैं और अपनी सचाई आदमी खुद जानता है ! बुराई किसी की नहीं करते इसीलिए मिसेज त्रिपाठी की बड़ाई खूब करते हैं । मिसेज, 'गर्क' जी से यशोपार्जन का काम लेती हैं । यश कमाना बुरा नहीं । यश की लालच, लालच नहीं होती । मार्क्स, गाँधी, फ्रायड, लालची नहीं कहे जा सकते । इसीलिए यह गोष्ठी मिसेज त्रिपाठी को एक अभिनन्दन ग्रंथ देगी । 'गर्क' जी महाकाव्य लिखेंगे । मस्ताना जी खण्डकाव्य और सरस जी कविता के साथ-साथ मिसेज का बड़ा-सा स्केच बनाएँगे ।

मित्र मंडली लूडो पर जम गई है । यह लूडो भी क्या खेल है ? एक दिन खेलने को मिल गया तो तबीयत रोज-रोज उतर आती है । इसी चलते हफ्तों से शाम के पाँच घंटे यों ही गुजर जाते हैं । मंडली के लोग कुछ खयाल नहीं करते ! कौन पचीस का है और कौन पचास का इधर से 'ये' आए और उधर से 'वो', मिनटभर की पहचान हुई और लूडो ने उनके बीच चचा-भतीजा का रिश्ता कायम कर दिया । मिस्टर विजय की नाक पर ही गुस्से की पिचकारी रहती है । मिस्टर उदय जब हारते हैं तब खेल उखाड़ने की कोशिश करते हैं, वैसे अच्छे आदमी हैं । बाबू काशीनाथ गुस्साते भी हैं और चुप भी रहा करते हैं । मंडली ने उन्हें लूडो कालेज का प्रिंसपल बना रखा है इसलिए बिचारे अपने खेलने के बजाय दूसरों को खेलने का चान्स अक्सर दिया करते हैं । मिस्टर किशोर को मजा तब आता है जब जमा हुआ खेल भण्डोल हो जाए और खेलने वालों के चेहरे पर क्रोध की ट्रेन्चे खुद जाएँ—उनके दिमागी बाम्बिंग से बचने के लिए । मास्टर साहब प्लेन आदमी हैं । हर की सूरत पर हलकी मुसकुराहट झलका देते हैं चाहे वह सूरत रोनी हो या मुस्कान भरी । दर्द और खुशी—सब पर एक समान वर्षा करते हैं । और यह मिस्टर पाठक लूडो के खेल को बचकाना समझते हैं । खेल के पास सटे-सटे पाँच घंटे बैठे रहते हैं मगर उस ओर नजर तक नहीं देते, मैगजिन पढ़ा करते हैं, बिना बुलाए मंडली के साथ बैठने और उठने की उनकी आदत हो गई है ।

अपनी आदत नहीं छोड़ते, मंडली को आदत छोड़ने की सलाह देते हैं। मिस्टर वीर तो वीर ही हैं। रोज हारते हैं मगर अपनी प्लेट रोजाना ही पकड़ते हैं। हारकर हटे तो वीर क्या? जब बैठते हैं, हराने की ही चुनौती देते हैं। मंडली की गति छोटी झील की तरह चलती है। कहीं कोई हलकोरा नहीं। ज्वार-भाटा के असर से बिलकुल अलग। कभी-कभी तूफ़ान आने पर हल्की-हल्की लहरियाँ सिहरती-सी उठ जाती हैं और झिलमिलाकर खतम हो जाती हैं।

गाँधी मैदान में शहर के नेता भाई जयचन्द जी का भाषण चल रहा है। जयचन्दजी का नाम ही जयचन्द है, यों उन्होंने देश के लिए जो त्याग और सेवा की है वह क्या कोई देश भक्त कर सकेगा? मैदान लाउडस्पीकरों से भरा है। उसके अनुपात में श्रोताओं का समूह कुछ कम है। जयचन्द भाई ने आवाज क्या पाई है? खुदा—कसम इतने जोश से बोल रहे हैं जैसे पचास हजार की भीड़ हो गई हो (गोया भीड़ पचास से ही कुछ अधिक की होगी)। वर्कर्स रैली है। अधिक भीड़ की जरूरत भी नहीं। मगर उनमें जोश कितना है? यह जोश भी क्या चीज है? जितना खर्च करो उसका दुगुना बढ़ता है। और बात यह भी है कि भाई जयचन्द के ये वर्कर्स पचास की संख्या में होते हुए भी पचास हजार के बराबर हैं। द्वापर-युग के भीम दस हजार हाथियों के बराबर होते थे, कलियुग के भीम एक हजार आदमियों के बराबर—इसमें ताज्जुब की बात क्या है? भाई जयचन्द भी इन वर्करों का कितना खयाल करते हैं? बिना माँगे ही हर महीने हर की जेब में दस का नोट आ जाता है, वैसे जरूरत पड़ने पर नोटों की संख्या बढ़ भी सकती है। भाषण देने की कला भी उन्हें मिली है। इस कदर असर डालती है कि सुननेवालों का सिर जोश से आपस में टकरा जाता है। श्रद्धा के भार से आँखें मुँद-सी जाती हैं और जम्हाइयाँ आने लगती हैं—शायद श्रद्धा के आवेश के वेग से। नेता वही है जो बातों से ही भीमों की आँखें नींद से भर दे। शरीर ढीला न हुआ तो प्रभाव का क्या अर्थ? कुछ असर तो होना ही चाहिए।

स्टेशन रोड पर सरकारी बस एक रिक्शे से टकरा गई। रिक्शा चालक वहीं समाप्त हो गया लेकिन सवारियाँ बच गईं। बस की क्षति नहीं हुई, सिर्फ सामने कुछ धक्के का दाग आ गया जिसे वर्कशाप का मामूली मिस्त्री भी ठीक कर सकता है। रिक्शे के सवारों में दो एसेम्बली के सदस्य थे। उनका बचना—एक सौभाग्य ही था। जनता के प्रतिनिधियों के चित्र कल इस खबर के साथ-ही-साथ अखबारों में छपेंगे। जगह-जगह से बधाइयों के तार मिलेंगे। और अखबारों के सम्पादक उन्हें शुभ-कामनाएँ देते हुए उनके त्यागमय जीवन और चरित्र को एक बार जरूर ही याद करेंगे। यह चरित्र भी क्या चीज है? जिसे मिल जाता है हीरे की तरह कभी बदलता ही नहीं, चाहे उसपर लाख रंग फेंकिए। अस्पताल में उनके छिले हुए घुटनों को देखने के लिए मंत्रियों की कारें जुटेंगी। नीली, पीली, झबरी, लाल, हरी, काली—बारह रंगों की कारें। इस तरीके से सजी हुई कि गुलाब के फूल भी मात हैं। कितनी खूबसूरती होती है—इन कारों में? और मंत्री भी इन्हें कितने तरीके से रखते हैं? रहने की डीसेन्सी मंत्रियों को ही आती है? बाकी तो यह हिन्दुस्तान की जनता अशिक्षित है, रहना क्या जाने? रहना भी एक कला है? पदाधिकारियों की भीड़ भी जरूर होगी, डाक्टरों की चहलकदमी देखते ही बनेगी। देश-सेवा का फल अच्छा ही होता है—'सेवा का फल मेवा।' यह दो प्रतिनिधि साधारण नहीं थे। मोटरों की हैसियत रखते हुए भी छोटी सवारी रिक्शे पर चलते थे। बस का ड्राइवर गिरफ्तार हो गया। उसका कहना है—बस की इंजन खराब हो गई। सरकारी मिस्त्री का भी यही कहना है। टक्कर लगने का कोई कारण तो होगा ही? रिक्शावाला भी गलत रास्ते पर था। अपनी ही गलती से से अपनी जान खो बैठा। क्या करे? बिचारा अनपढ़ था, ट्राफिक रूल्स से वाकिफ नहीं रहा। और इंजन खराब होकर कुछ भी कर सकता है। टकराना क्या? रिक्शा क्या? मंत्रियों, आफिसरों और लाटसाहब तक को कुचल सकता है। आखिर है तो लोहे का भूत ही। लोहे को दिमाग नहीं होता, दिल नहीं होता और दिमाग में सूझ-बूझ नहीं होती।

देवकी-मन्दिर में पाँच रोज से अखण्ड कीर्तन चल रहा है। स्वामी आनन्द ब्रह्मचारी का प्रवचन भी उसी के साथ-साथ हो जाता है। कोयला मर्चेन्ट रमेश बाबू केमानी की धर्मपत्नी देवकी देवी बड़ी धर्मात्मा हैं। जवानी में उन्होंने बड़े-बड़े पाप कर डाले थे। पति तक को छोड़ दिया था। जवानी तो मदान्ध होती ही है—इसमें आदमी का क्या दोष? लेकिन देवकी जी कुलीन घराने की थीं! उन्हें अपने पापमय जीवन से बड़ी ग्लानि हुई। इसी ग्लानि ने असमय में ही बिचारी को सन्यास लेने के लिए मजबूर कर दिया। यह मन्दिर उन्होंने ही बनवाई है। जब से मन्दिर बनी है, घर में बरकत ही बरकत है। केमानी जी सोचते हैं पत्नी मिले तो देवकी जैसी धर्मात्मा। यों भूल किससे नहीं होती, लेकिन सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते। ब्रह्मचारी जी बड़े तपस्वी हैं। जवानी में ही तेज आ गया है। मुखमण्डल मानों प्रताप से चमक उठा है। चरित्र ही आदमी का गुण है। सदा सच बोलो। स्त्रियों से अलग रहकर तपस्या करना सीखो। ब्रह्मचारी जी के प्रवचन बड़े ज्ञानप्रद होते हैं। इसी के बल पर बराबर नर-नारियों से घिरे रहते हैं। स्त्रियाँ उन्हें चन्दन लगाती हैं। कुमारियाँ आरती उतारती हैं, मालाएँ पहनाती हैं। वे माँस, मछली नहीं खाते, केवल फल, दूध, दही पर ही रहते हैं। कृष्ण की रासलीला का वर्णन करते-करते उनका शरीर नाचने लगता है। राधा का विरह छाती पीट-पीट कर सुनाते हैं और भगवत प्रेम में विभोर होकर अपने वस्त्र तक का ध्यान नहीं रखते। नर-नारियों की उपस्थिति भूल जाते हैं। आँखों में आँसू और खुली छाती पर पसीने की लकीरें खिंच आती हैं। बाहों की खुली पसलियाँ चमक उठती हैं। नेत्र, प्रेम की मदिरा पीकर उनींदे हो जाते हैं।

राजेन्द्र स्टेडियम में फुटबाल-मैच हो रही है। कलकत्ते की टीम मोहनबगान, बम्बई की टीम 'नेवी' के साथ सेमी-फाइनल खेल रही है। शहर के खेल-कूद में नया परिवर्त्तन आ गया है। अखबारों में नए-नए कालम खोले गए हैं। जनता खेल-कूद में दिलचस्पी लेती है और खेल-कूद, खुशहाली की एक निशानी है। मैच में आठ आने

से कम का टिकट नहीं, फिर भी भीड़ है। हजरत नियामत खाँ दिमागदार आदमी हैं—इसमें शक नहीं। शहर के खेल-कूद की तरक्की में हाथ लगाया तो कितनी कामयाबी हासिल हो गई ? जिलाधीश को अध्यक्ष बनाया और खुद आलइंडिया टूर्नामेन्ट के सेक्रेटरी हो गए। टूर्नामेन्ट शुरू होने के दिन बैंक की सारी रकम खतम हो गई थी और वे गोल्डकप पर ही जोर दे रहे थे। अखबारों में कप की जगह गोल्डकप का एलान करा दिया। गजब का काम किया। रेफ्री से कह कर जितनी भी अच्छी मैचें हुईं सब में तीन-तीन ड्रा करवा दिए। पैसे-ही-पैसे हो गए। दस की जगह तीस हजार आ गए। यह सेमी फाइनल भी दो रोज से ड्रा हो रही है। शहर के बाहर से आनेवालों को मौका मिल जाता है। और फाइनल के दिन तो टिकट दर भी दुगुना कर दिया जाएगा। नियामत खाँ के चलते यह रकम साठ हजार भी हो सकती है। फिर गोल्डकप की कौन कहे ? जहाँ रिस्क है, वहीं गेन भी है। खेल-कूद की तरक्की इस साल की तरह कभी नहीं हुई और नियामत खाँ का समय भी अब बैठे-बैठे होमियोपैथिक दवाइयाँ बाँटने के लिए नकली मरीजों को इकट्ठा करने में बेकार नहीं जाता। नियामत खाँ के जिम्मे टूर्नामेन्ट की सारी रकम है। रुपए-पैसे का मामला हमेशा सेक्रेटरी को खुद देखना चाहिए, नहीं तो मातेहत लोग गोलमाल कर देते हैं। फिर संस्था की भी बात है। जिम्मेवारी है। अगले साल हजरत खाँ जरूर ही ओलम्पिक एशोसिएशन के प्रेसिडेन्ट हो जाएँगे। और दिमागदारी का नमूना इसी तरह पेश करते रहे तो एक दिन जरूर ही लन्दन, मास्को और न्यूयार्क की सफर कर आएँगे। वहाँ जाकर हिन्दुस्तानी खेल-कूद का नाम फैलाएँगे। हिन्दुस्तान खेलों में पिछड़ा नहीं है।

कांग्रेस के कर्मठ नेता (विगत राय बहादुर) पंडित रामपदारथ शर्मा की बड़ी लड़की चन्द्रा घर के ड्राइवर हरिहर के साथ भाग गई। शर्मा जी का क्रोध उमड़ पड़ा है। पुलिस के जरिए ड्राइवर के घर की एक-एक चीज नुचवा लेंगे। देश भर में उसकी खोज होगी। पकड़ जाने पर शख्त-से-शख्त सजा मिलेगी क्योंकि चन्द्रा के बालिग होने में अभी एक वर्ष की देर है—

स्कूल सर्टिफिकेट के अनुसार (वैसे वह बाइस की क्यों न हो ?)। हरिहर को छठी का दूध याद आ जाएगा। भले घर की इज्जत बिगाड़ने की क्या सजा होती है ? सब मालूम हो जाएगा। लेकिन शहर के अखबारों ने कितनी बेवकूफी की ? मोटे-मोटे अक्षरों में यह खबर छाप दी। बड़े विचित्र होते हैं वे ? बड़े-छोटे का भी खयाल नहीं रखते। छाप-छाप कर सभी जगह ढिंढोरा पिटवा दिया। यह हरिहर कोई नवयुवकों का हीरो था ? कांग्रेस के लोग शर्मा जी से पूछेंगे। तब क्या होगा ? खैर कोई बात नहीं। चन्द्रा चली गई तो अपनी मर्जी से। बालिग हो या नाबालिग ! एक वर्ष में दिल नहीं बदल जाता। वे पुलिस से मामला वापस ले लेंगे। अखबारों में इश्तेहार छपवा देंगे। लौट आने पर दोनों की शादी कर देंगे। हरिहर कहार जाति का है तो क्या ? जाति-भेद नहीं देखा जाता ! हरिहर गरीब है। इससे क्या ? दामाद को अमीर बनाना अपने हाथ में है। हरिहर पढ़ा लिखा नहीं है। किसी बिजनेस में लग जाएगा। कांग्रेस में शर्मा जी की इज्जत बढ़ जाएगी। समाज सुधारकों के नेता हो जाएँगे। ऐसा सुनहला अवसर बार-बार नहीं आता ! भगवान जो कुछ करते हैं, भले के लिए ही करते हैं !

मुरादपुर के टी० बी० सेनीटोरियम की छत से एक चील उड़ी और चीखती हुई सामने के बाजारों से होकर कहीं चली गई। दो-चार कौए चिल्लाते हुए भाग गए। एक बूढ़ी औरत का रोना सुन पड़ा। एक नौजवान लेखक की मौत हो गई। सेनीटोरियम में चार सालों से पड़ा था। घर में कोई नहीं था, एक बूढ़ी माँ थी। किसी तरह घर-जमीन सब कुछ बेचकर बिचारे को पढ़ाया और जब कमाई के दिन आए तो रोग की कमाई हो गई। लेखक न होता तो शायद यह कमाई देखने को न मिलती। अपनी-अपनी किस्मत है। वह नौजवान था मगर किसी से गुप्त प्रेम नहीं करता था। वह सालों से बेकार था मगर उसने आत्महत्या नहीं की। उसका सिर ट्रेन से कटा नहीं लेकिन बेजान हो गया। सरकार की ओर से लेखक होने के नाते उसे कोई सहायता नहीं मिली क्योंकि वह अभी नया था—

आइडिया नहीं बना सका था। जनता में अपना प्रचार नहीं करा सका था। गरीब था और साहित्य को मौन साधना समझता था। चुप रहता और अखबारों से डरकर दूर भागता। लुक-छिपकर डायरी में लिखा करता। सरकार कैसे जान सकती थी? इसीलिए मौत हो गई। कहीं से दो नौजवान और मिल गए—फटी धोती और बिखरे बालोंवाले—शायद कविताई करते थे, सस्ती प्रेम-कहानियाँ लिखते थे। मरे हुए लेखक की लाश को उन्होंने अस्पताल की नर्सों की मदद से काले कपड़ों में ढँक दिया और खुद उठाकर घाट की ओर ले गए। पीछे-पीछे रोती हुई बूढ़ी औरत को सम्हालते हुए अस्पताल का काले घुंघराले बालोंवाला स्वीपर (जो अपने को सोफर कहता था, शायद स्वीपर कहने में संकोच होती थी) चलता गया। वह कहीं से रुपए ले आया था—लेखक के दाह-संस्कार के लिए। क्योंकि उसे लेखक से दोस्ती हो गई थी। अक्सर उसके पास बैठकर रूमानी कविताएँ, प्रेम के किस्से और दर्शन की बातें सुना करता था। बातों में बड़ी ताकत होती है। उन्होंने दोनों को मिलाकर एक कर दिया। जहाँ-जहाँ लाश गई, देखनेवालों ने घृणा से भरकर कहा—'कोई नीच है, इसीलिए साथ घर के सब सवांग नहीं है।" सोफर बूढ़ी औरत को समझा कर कह रहा था—'माँ, मैं तो हूँ। तुम रोती क्यों हो?" (और खुद फूट-फूटकर रो रहा था।) उसे समझाने कोई नहीं आया। वह दोस्त था। दोस्त की कीमत नहीं होती, दोस्ती की होती है। साँझ धीरे-धीरे गुजर गई। शायद चिता की लपटें ज्यादा लाल मालूम हो सकें। दूर-दूर तक दिखाई दे जाएँ। इसीलिए आसमान में चाँद नहीं उगा।

गोलघर बन रहा है। बहुत ऊँचा है। ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, वैसे देखने में लगता है सात-आठ ताड़ खड़े कर दिए जाएँ तब भी उनसे कुछ ऊँचा ही दिखेगा। उसके टूटे पत्थरों को तोड़-तोड़ कर हटाया जा रहा है और उन पर नई प्लास्टर हो रही है। लाखों का खर्च होगा। दूर-दूर से लोग आते हैं—देखने के लिए। पटने की (या हिन्दुस्तान की भी कह सकते हैं) देखने लायक जगह है। कमेटी की तरफ से नई

कालोनी बसाई जा रही है। कालोनी का हर घर, सात-तल्लों का होगा। हर तल्ले की कीमत आठ हजार होगी। कोई पन्द्रह सौ घर होंगे। शानदार सीन होगा। झोपड़ियाँ हटाई जा रही हैं। कच्चे मकान तोड़े जा रहे हैं। आदमी को आगे बढ़ना चाहिए। मिट्टी का जमाना लद गया, अब सीमेन्ट और पत्थरों के जमाने आए हैं। शहर की हर गली, सीमेन्ट से रंगी जाएगी। हर सड़क पर, पत्थर की चादरें बिछेंगी। शहर की तरक्की हो रही है। उसकी रगों में उत्साह की लहरें हैं। जिन्दा-दिली की परछाइयाँ हैं। मैं उसके जीवन से चिमट रहा हूँ। उसकी सजावट से खिंच रहा हूँ। मुझे उससे घृणा नहीं है। मुझे उसकी ईटों से चिढ़ नहीं है। उसके हर आदमी को गौर से देखता हूँ। हर औरत की रंगभरी चहलकदमी, अदाएँ और आँखें मुझे झकझोरती हैं। शहर जिन्दा है और मैं मोहित हूँ क्योंकि मैं सिद्धार्थ नहीं हूँ जिसने बड़ी निर्ममता से नगर का त्याग किया था और जिसकी बताई हुई राह पर सदियों बाद के राजनीतिज्ञ भी चलने का दावा करते हैं ?

चतुर्थ खण्ड

एक संस्मरण, एक व्यंग-चित्र एक आत्मालाप तथा पाँच लघुकथाएँ

संस्मरण : जगन्नाथाय भुवनेश्वरा:

व्यंग-चित्र : विद्या ददाति विनयम्

आत्मालाप : गंगा-तट का सूर्य-ग्रहण

लघु कथाएँ : प्रतिद्वन्दी, दृष्टिकोण, पसन्द, प्रभाव तथा अस्पताल

जगन्नाथाय भुवनेश्वरा:

मुझ जैसे नास्तिक के मन में उपासना की स्वर-लहरियों का कोई आमंत्रण-नाद नहीं था, विकारों से भरी .एक विवशता थी जिसके चक्र-तंतु में, प्रकृति नटी के ·लघुइंगितों पर नर्तन करनेवाला प्रत्येक सांसारिक जीव आवा-गमन की परिक्रमा करते हुए आबद्ध रहता है। आहार की चिन्ता सैकड़ों मील दूर महामन्दिर जगन्नाथ की छाया में प्रफुल्लिता और गर्विता धरित्री जगन्नाथ-पुरी का वैभव आँकने के लिए खींच ले गई थी। नौकरी की लालच, अन्तर्वीक्षा की लीला और रजत-टुकड़ों की लिप्सा किसी दिन ऐसे स्थान पर ला खड़ाकर देगी जहाँ मनुष्य पलभर के लिए एक अलौकिक दिवा स्वप्निल प्रान्तर में भ्रमण करने लगता है—ऐसा किञ्चित विश्वास नहीं था। नेत्रों के अधखुले पट पर, मद का घड़ा लेकर अट्टहास करनेवाला उन्मादी अन्धविश्वास—उस दिन तमिस्रा की घड़ियों के घेरे से आगे बढ़कर जिस अविभाज्य प्रकाश-पुंज की अखण्ड ज्योति का दर्शन कर रहा था, कदाचित इस जीवन के काल-खण्ड में कभी भी उसका रूप दृष्टिगत नहीं हो सकता। दिग्भ्रान्त पातकी की कलुषित आत्मा का स्पर्श पतित पावनी मुक्ति-गंगा के धवल स्रोत से हुआ था—यह एक विचित्र-सी लगनेवाली घटना आज किसी भूले हुए स्वप्न की तरह मादक और अविस्मरणीय लगती है।

सागर की उत्ताल तरंगों से नित्य अपना चरण-रज धोनेवाली जगन्नाथ की पुरी, भारतीय इतिहास के प्राचीन प्रतीकों को, दर्शकों के सम्मुख उपस्थित कर रही थी। जीवन भर तड़ागों और नदी-नालों की सीमा में विचरण करनेवाला जीव, सागर की अपार गरिमा देख अपनी लघुता का प्रथम बार

अनुभव कर रहा था। मस्तिष्क की सम्पूर्ण कल्पनाएँ सत्य की उन्मुक्त चित्र-वल्लरियों के समक्ष मन्द पड़ गई थीं। उनका सारा दर्प अपने में खण्ड-खण्ड होकर धूल धूसरित हो गया था। प्रवंचना के बिम्ब बोध की ज्ञान-रश्मियों के भीतर समाविष्ट हो गए थे तथा अहम् की दीर्घ-रेखा-सी फैलनेवाली चादर 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' के रागों में, अपने अस्तित्व के सम्पूर्ण परिचय को आत्मसात करने लगी थी। मनुष्य धर्मराज-नगरी भक्त वत्सला पुरी की गोद में एक निकृष्ट कीट का-सा लगनेवाला दयनीय पात्र हो रहा था।

आधुनिक मान्यताओं के साहचर्य से तीर्थ नगरी पुरी की छटा, एक विचित्र सम्मिश्रण का रूप प्रगट कर रही थी जिसके प्रभाव से विचारशील मस्तिष्क की सुइयाँ अनायास ही घूम जाती हैं। नवीन और प्राचीन के जुड़ते हुए क्षितिज पर धूमिल आवर्त-सा लगनेवाला नगर अतिशयोक्ति का विषय बन रहा था। एक ओर महाविद्यालयों, प्रशासन-संस्थाओं के प्राङ्गण में उपजती हुई आधुनिक सभ्यता के रूप और दूसरी ओर धर्मशालाओं और परम्परा के मार्ग पर अतिक्रमण करनेवाले धार्मिक स्थलों के मुख-विवरों में कसी हुई प्राचीनता के अंश, एक चितकबरे परिवेश का सर्जन कर रहे थे। अन्धकार और प्रकाश की आँख-मिचौनी में ऊँघता हुआ प्रदेश मुझ जैसे यात्री के लिए उत्सुकता से भरा था। कुछ चमकती-सी मोटर गाड़ियाँ आँखों को चकाचौंध करती हुई खिसक जाती थीं और कुछ ऊबड़-खाबड़ से लगनेवाले रिक्शे आँखों को रुखड़ा-सा किए देते थे। मार्ग अधिकांशतः धूलों से भरे थे। विशेषतः दो धर्मशालाओं के बीच से अग्रसरित होनेवाला और महामन्दिर जगन्नाथ के द्वार का स्पर्श करते हुए सागर-तट की ओर निकल जानेवाला मार्ग, मन्दिर तक धूलों से भरा ही था। वहाँ के निवासी, सीधे-सादे अपने हृदय की कलुषता को स्पष्ट रूप से उभार रखने में कोई संकोच का अनुभव नहीं कर रहे थे।

महामन्दिर के द्वार पर एक लम्बे प्रस्तर-स्तम्भ के दर्शन हुए। इस एकमात्र स्तम्भ के विषय में सुना गया कि वह एक ही शिला का भाग है

जिसे मन्दिर के निर्माता ने काट-छाँट कर स्तम्भ के रूप में परिणत कराया था। द्वार के सम्मुख भूला-भटका-सा लगनेवाला स्तम्भ, एक अकेला ही क्यों बनवाया गया—यह एक शंका मन में घर करने लगी। वैसे द्वार पर दो स्तम्भों के सहारे टिकनेवाले कोई विशाल प्रवेश-द्वार का निर्माण होना चाहिए था जिसके नीचे से होकर चलनेवाला यात्री पलभर को आकर्षण से घिर जाता और चकित हो उठता। इस शंका और उत्सुकता के समाधान के लिए वहाँ के निवासियों ने बताया 'मनुष्य अकेला आता है और अकेला जाता है।' स्तम्भ भूला भटका-सा लगकर भी अन्तराल में एक चिरंतन भाव-धारा की गहरी छाप उगाता जा रहा था।

एकाकी स्तम्भ तक आते-आते पण्डों के दल चारो दिशाओं से निकल-कर आपस में टकराते हुए पुण्य-वर्षा करने लगे। उस वर्षा की बूँदों से भींगता हुआ मन पलभर को खिन्नता से पूरित हो उठा। एक साथ अनेकों की संख्या में होकर भी ये, एक तुच्छ प्राणी मात्र को इतने वेग से क्यों जकड़ लेते हैं? मन उनके प्रति कुविचारों से भरने लगा। उनके आपसी मतभेद, *शारीरिक द्वन्द्व तथा कर्कश वाणी-प्रहारों से लगता था किसी विशाल दीपालय* के नीचे का भाग निस्सीम अन्धकार के गर्त में डूब रहा हो। सुदूर से आते हुए यात्रिक, अपने मन के अन्धकार को जिस अंचल में प्रवेश कर धो देने का उपक्रम करते हैं—उसी अंचल के धर्म-वक्ता, यजमानों के लिए परस्पर शत्रुता का प्रदर्शन करने में तनिक भी ग्लानि का अनुभव नहीं कर रहे थे। सूखे रक्त के गन्धित बिन्दु-कण पर घिरनेवाले मक्षिकादलों को देखकर भावों में जो घृणा उत्पन्न होती है—वह क्या इनके लिए नहीं सुरक्षित रखी जा सकती? विचारों का घात-प्रतिघात बढ़ने लगा। पण्डों के कर्कश नादों से एक नूतन दर्शन की परिभाषा प्राप्त हुई—मृत्यु-लोक के इच्छुक जीव को मुक्ति तथा मन्दिर माहात्म्य का रहस्य बतला कर प्रत्येक तीर्थ देश-वासी ब्राह्मण का कर्त्तव्य पुण्य का भागी बनना है। इसी पुण्योपार्जन के हेतु परस्पर द्वन्द्व,वाणी-प्रहार तथा जय-पराजय की प्रक्रिया जीवन्त हो रही थी। पुण्य का लोभ, लोभ नहीं होता। पुण्य के लिए हिंसा, हिंसा नहीं होती

और पुराय के लिए युद्ध वर्जित नहीं है। इस दर्शन की स्थापनाओं से मन की द्विधा समाप्त नहीं हुई किन्तु कुछ काल के लिए सूक्ष्म अवश्य पड़ गई थी।

मन्दिर की सीढ़ियों पर पाँव रखते ही मन्दिर का प्राङ्गण दीखने लगा। प्राङ्गण की सीमा सामने से बहुत बड़ी नहीं लगती थी किन्तु उसका धरातल, चट्टान के चौकोर टुकड़ों से पाटा गया था जो सम्पूर्णतः पाषाणी गरिमा का भव्य उदाहरण प्रस्तुत कर रहा था। उसके भीतर से निकलती हुई मूक किन्तु सांकेतिक ध्वनि कह रही थी—कला और भक्ति के संस्पर्श से पाषाणों का हृदय-परिवर्तन नितान्त ही सम्भवसाध्य है। प्राङ्गण में विशालकाय महामन्दिर के किनारे-किनारे उमड़नेवाली भीड़ ऐसी लगती थी जैसे किसी पावन गिरि-शिखर के चरणों का स्पर्श करने के लिए, परिक्रमा करती हुई कोई श्वेतस्विनी जल-धारा उमड़ रही हो। भीड़ क्या थी? श्वेतवस्त्रा वृद्धा विधवाओं का समूह एकत्रित था।

प्राङ्गण का प्रथम दर्शन ही मन में विराग के प्रति आकर्षण जाग्रत करने लगा। प्रत्येक युवा, एक दिन इसी वृद्धावस्था के जाल में आकर गिर जाएगा और अपने को सम्पूर्ण शक्तियों से रहित अनाथ जैसा समझने लगेगा, तब उसे जगन्नाथ की शरण ग्रहण करने का बोध होगा। यह मनुष्य का अहंकार उसके वास्तविक आकार को किस प्रकार आच्छादित कर देता है? क्षणिक रंगों के रिक्त आवरण, युवा के स्वर्णिम स्वप्न बनकर समस्त ज्ञान को आवेग और प्रमाद के बीच घेरे रहते हैं किन्तु एक दिन, जब इस रहस्य का आवरण उठ जाता है तब मनुष्य किसी विराट् शक्तिमान के समक्ष गिरकर त्राहि-त्राहि का क्रन्दन करने लगता है। यह आवरण विलम्ब से उठता है, जीवन के अन्तिम क्षणों में इसका रहस्य खुलता है, तब जो भी रहे-सहे दिन व्यतीत करने को रहते हैं, पश्चाताप, विभ्रम और मिथ्या की वीथियों में भटक-भटक कर कटते जाते हैं। मनुष्य क्यों नहीं सोचता? क्यों नहीं उसके मन में वह सब आ जाता जो पश्चाताप के अन्तिम दिनों में आता है? मेरी विचार-धाराएँ अनेक प्रश्नावलियों की

लहरों पर डूबती-उतारती जा रही थीं। थोड़े समय के लिए ही सही, जीवन की वास्तविक पृष्ठभूमि का दृश्य सम्मुख नाच रहा था और जीर्ण-शीर्ण विधवा-मण्डली के बीच जब कोई लावण्यशीला युवती की सूनी माँग दृष्टि के ऊपर खिंच जाती थी तब मन अनायास ही एक गहरी मर्म भरी व्यथा से टकराकर आहत हो जाता था।

जगन्नाथ की छत्र-छाया में उमड़नेवाली विधवा-मण्डलियों ने चित्त में विराग की जो स्थिति उत्पन्न कर दी थी उसने अनेक क्षणों तक विवेक को शून्यमय बना दिया था किन्तु शून्य का प्रभाव घटते ही मन्दिर-दर्शन की अभिलाषा उत्कट वेग से जाग पड़ी। मन्दिर के भवन पर रचित काम-क्रीड़ा के अश्लील चित्रों की ओर ध्यान आकर्षित होते ही, एक आश्चर्य की धारा शरीर की सम्पूर्ण रगों में प्रवहमान हो गई। नेत्र-युगल ठिठक कर रह गए। उन्होंने जो कुछ भी देखा उस पर जैसे उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। इष्ट देवी-देवताओं की मूर्तियाँ जिन दीवारों के नीचे प्रतिष्ठापित की गई थीं उनके ही ऊपर काम-वासना को झकझोरनेवाले अश्लील आसन-चित्रों का निर्माण कौन-सी कला का प्रमाण हो सकता है? किसी भी अनजान व्यक्ति के लिए यह कौतूहल अयाचित-सा ही होगा। कुछ किंवदंतियों के अनुसार जगन्नाथ का मन्दिर किसी समय बौद्ध सिद्धों का मन्दिर था जहाँ से बुद्ध की मूर्ति हटाकर मूर्तित्रयी की स्थापना की गई थी। इस उक्ति पर सहज ही विश्वास नहीं हुआ! कारण जिस सत्ताधारी ने ऐसा किया होगा, उसने किस हेतु सिद्धों की गिरती हुई परम्परा के अंशों को मन्दिर पर सुसज्जित रहने के लिए रख छोड़ा होगा? एक उक्ति अवश्य ही विश्वसनीय-सी लगी। मनुष्य का चित्त अत्यन्त चंचल है, वह नाना लोभ के वशीभूत होकर वासना और दम्भ के घेरे में बँधा रहता है। जगन्नाथ की छत्र-छाया में आने का अधिकार उसे ही है जो इन सारी भव-बाधाओं से मुक्त होने की इच्छा रखता हुआ अपने में वैराग्य का अंकुर संजो रहा हो। अधिकांशतः जगत की इच्छा तजनेवाले कामना हीन व्यक्तियों की भूमि ही जगन्नाथ की भूमि है। अतएव वैराग्य की

इच्छा रखनेवाले जगत की तृष्णाओं से उदासीन व्यक्तियों की परीक्षा लेने के लिए इन आसन-चित्रों का निर्माण हुआ। विरागी इन चित्रों की अदम्य वासना की ओर नहीं देखता होगा और सीधे मन्दिर के भीतर चला आता होगा। परीक्षा-स्थल का निर्माण इस सत्य का सूचक है कि मुक्ति-मार्ग में काम का लोभ पहले ही आता है और स्थिर इन्द्रियों को चलायमान करता हुआ तपस्या-व्रत पर कठोर प्रहार करने का सदैव उपक्रम करता है। इस तथ्य के जानकार नित्य प्रति दर्शनार्थ आते जा रहे थे तथा किञ्चित भी विलम्ब न कर, मन्दिर के अन्तरंग गृह की ओर बढ़ जाते थे। नवागन्तुकों का ज्ञान इस तथ्य से सर्वथा अपरिचित रहने के कारण उनकी जिज्ञासा कला की इस नग्नता के प्रति अत्यन्त सजग हो रही थी। वैसे इसकी कलात्मकता के विषय में निर्णय करना कठिन था, किन्तु इसकी दार्शनिक पीठिका समझने की समस्या प्रायः सुलझ गई थी।

मन्दिर के भीतर नगराजों की कन्दराओं के समान अनन्त अंधकार का एक खण्ड दैत्याकार उसाँसे छोड़ रहा था। कुछ दूरी तक सँकरी गली थी, उसके पश्चात एक प्रस्तर मंच था जिससे सटकर दाएँ-बाएँ दो पार्श्व-द्वार भी थे तथा उसके आगे अंधकार के प्रकोष्ठ में मूर्त्तित्रयी की स्थापना थी। नर-नारी समूह से आच्छन्न, अंधकार का यह खण्ड प्रस्तर-दीपों से कभी-कभी आलोकित हो उठता था। दर्शक के हृदय में अंधकार और उसके चतुर्दिक परिवेश में अंधकार—मात्र काया का एक व्यवधान! और जब यही व्यवधान नष्ट हो जाता है, तब अंधकार का घिरा हुआ धूम्र आकाश की ओर उठता हुआ अतल कुहेलिका के लोक में, विलीन होकर एकाकार हो जाता है। 'जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है'—प्रकोष्ठ का वातावरण अपनी आर्द्रता से इसकी सार्थकता स्थापित कर रहा था।

मूर्त्ति-स्थान, प्रकोष्ठ के अन्तर्गत ऊँचे मंच पर आश्रित काष्ठ-कपाटोंवाले गृह में सुशोभित हो रहा था। त्रयी-शोभा के सौन्दर्य पर आत्म-विभोर होनेवाले भक्त नर-नारियों के दल श्लोकों, ग्राम-गीतों और मंत्रों की कड़ियाँ

गा रहे थे और कोटि-कोटि जनों के विश्वासी जगन्नाथ अपनी शान्त प्रसन्नता के आशीर्वाद वितरित कर रहे थे। देखते-देखते उनके चरणों पर, न जाने कितने ही त्रस्त प्राणों के अश्रु-पुष्प गिरकर बिखर गए, कितनी ही श्रद्धा की मणियाँ बिखर कर चूर्ण हो गईं और कितनी ही आशा की उद्वेलित घटाएँ उमंगों के संकेतों पर थिरक उठीं? मूर्त्ति-स्थान का तुमुल कोलाहल चिरन्तन था। जब तक कपाटों के मध्य अन्तराल का प्रभाव रहता तब तक जन-धारा का श्रोत कभी सूखता नहीं था। भक्त जन आते थे, ठहरते थे, चले जाते थे किन्तु इसी आगमन-प्रत्यागमन की रीति में जगन्नाथ का लोक कभी रिक्त नहीं हो पाता था।

प्रकोष्ठ के पार्श्व-द्वार से बाहर आते ही प्रसाद की गरिमा की ओर ध्यान गया। भात, दाल और सब्जियाँ—पूए, हलवे और पूड़ियाँ—कुछ मिष्ठान्न की ढेर। एक विचित्र-से लगनेवाले प्रसाद पण्डों द्वारा विक्रयार्थ प्रस्तुत हो रहे थे। नित्य प्रति गृहस्थों द्वारा भोजन किए जानेवाले अन्न, जगन्नाथ के प्रसाद की गरिमा बन रहे थे। पके हुए अन्न जो देवी-देवताओं तक पहुँचने के पात्र नहीं समझे जाते, किस भाँति जगन्नाथ के कृपा-पात्र बन गए? उनके देश का ही विधान भिन्न था। उनकी मर्यादा की व्याख्या ही अनूठी थी। इस रहस्य का अनुमान एक अशिक्षित ब्राह्मण-देवता से लगा, जो अध्ययन के अभाव में मात्र अपने पूर्वजों की वाणी और भक्ति का श्रवण का पुजारी-धर्म का कार्य कर रहे थे। जगन्नाथ की शरण में कोई भी श्रद्धा से चढ़ाया गया पदार्थ वर्जित नहीं है, फिर वे तो संसार के सभी गृहस्थ-प्राणियों के नाथ हैं, उनके यहाँ भेद-भाव की प्रतिष्ठा कहाँ? पाप युक्त जीवों के द्वारा पुण्य प्रसाद के रूप में फल-मूल अर्पित करना अशोभन ही होता है। फल-मूल संन्यासियों के हैं, गृहस्थों के नहीं। वास्तविक दृष्टि से यथार्थतः इस कथन की सत्यता प्रतीत हो रही थी क्योंकि जिन विविध रूपों में नाना दिशाओं से यात्रिक चले आ रहे थे, उनके आचारों में किसी प्रकार की एकरूपता का आरोपण करना दुस्वार ही था।

समीप ही से, एक मार्ग प्रसाद-कक्ष की ओर चला गया था। यह मार्ग

माँड़ के सूखे तथा चिपचिपे स्थलों से भर रहा था ! पाँव चिपक-चिपक कर छूट जाते थे । मार्ग के अन्त में प्रसाद-कक्ष अथवा पाकगृह का निर्माण था । गृह में काले धब्बों से दीवारें रंग गई थीं । अनेक चूल्हे बने हुए थे । सप्ताह में कई दिन इसी गृह में प्रसाद बनाए जाते थे । गृह क्या था ? साधारण भोजनालय का विशाल रूप मात्र था । उसके अवलोकन से किसी ऋषि-आश्रम अथवा संन्यासी-कुटीर का आभास नहीं हो सकता था, वरन् उसमें एक सहज स्वाभाविकता की वेदना परिलक्षित हो रही थी । वहाँ जगन्नाथ का एक सम्पूर्ण परिवार था और थी उस परिवार की सामूहिक अविछिन्नता जिसमें सर्व वर्ण विशेष के लिए सामान्य जगत के नियम रूप अन्न-ग्रहण की परम्परा समाहित हो चुकी थी । वही, जो एक परिवार में होता है । वही, जो असामान्य नहीं,सामान्य होता है । वही, जो त्याज्य नहीं,ग्राह्य होता है ।

प्रसाद-कक्ष से बाहर आते ही, महामन्दिर के प्राङ्गण-द्वार पर भिखारियों की संख्या चीत्कार करने लगी थी । नारकीय कोलाहल का दृश्य उपस्थित होने लगा था । देव-भोग के समय सहसा ऐसी भीड़ का एकत्रित हो जाना, वहाँ की परम्परागत मर्यादा थी । मन्दिर के प्राङ्गण में स्वच्छता, शान्ति और श्रद्धा का विघटन करती हुई, मलीनता, अशान्ति और घृणा की स्रोतस्विनी क्योंकर फूट गई ? क्यों ऐसे नारकीय दृश्यों को दर्शनीय स्थानों पर आमंत्रित करने की प्रथा प्रचलित कर दी गई थी ? चिन्तक गण जो भी विचार करें, किन्तु जगन्नाथ के घर की हर प्रथा अपने स्वयं में पृथक महत्त्व रखती है । यही नारकीय दृश्य तो नरक का बोध कराता है । आत्म-प्रवंचना में विस्मृत मनुष्य यहीं जीवन की नश्वरता का ज्ञान प्राप्त करता है । यही नरक-लोक उसे बुद्ध बनने की प्रेरणा देता है ! फिर इस नरक से अबोध रहना कौन-सा ज्ञान कहला सकता है ? बुद्ध वही थे,जिन्होंने इससे प्रेरणा लेकर उससे लाभ उठाया और जो इससे प्रेरणा नहीं लेना चाहते, उसे भली-भाँति न देखकर, नेत्र मूँद, आगे सरक जाते हैं, वे मात्र साधारण जन होकर नाना योनियों में भटकते हैं अथवा कष्ट सहकर भी मोक्ष के भागी नहीं रह जाते । जगन्नाथ के लोक का अनूठा विज्ञान सदा के लिए आराध्य बन गया था ।

तपोवन से परे रहकर भी संन्यासियों के लिए इष्टदेव, गृहस्थ-आश्रम की तरह अन्न का भोग संचित करने पर भी साधु-सन्तों के लिए ग्राह्य और वासना-चित्रों से परिपूर्ण होते हुए भी निष्कामियों के लिए मुक्तिदाता बनने-वाले देव जगन्नाथ की अपूर्व विचित्रता देखकर बार-बार अपलक नयनों से उनका नमन करने को मन लोलुप हो उठा था। अन्तिम बार, जब मैंने सम्पूर्ण रीति से प्राङ्गण के एक ऊँचे शिला-स्थल पर चढ़ मन्दिर का सिंहावलोकन किया, तब लगा जैसे पहाड़ों के बीच शिला-खण्डों को काट कर ही महामंदिर का निर्माण किया गया हो। मूर्त्ति एवं वास्तु-कला का अमूल्य पुरस्कार, जगत में स्वर्ग, नश्वरता में अमरता, चंचलता में शान्ति, वासना में त्याग और कठोरता में दया का स्वरूप प्रदान करने का अभियान कर रहा था।

मन्दिर की सीमा छूटते ही मोह का संवेग मन को घेरने लगा। कई घंटे का समय जिसकी सम्बद्धता में व्यतीत कर चुका था, अब वह वृत्त-चित्रों की भाँति स्मृतियों का खिलौना बनेगा। ढलते दिनों में रह-रहकर अधूरे खण्डहरों का रूप धारण करेगा और मन को अतीत का चित्रण करने को बाध्य करेगा। मन्दिर की सीमा छूट गई! मैं नास्तिक था और एक नास्तिक के रूप में मन्दिर की लीला देखने चला गया था! मोक्ष नहीं, परिनिर्वाण नहीं, दर्शन नहीं, मात्र मेरा उद्देश्य-एक भ्रमण था!

मैं एक यात्रिक की तरह आया था, तनिक ठहर कर चला गया; किन्तु जगन्नाथ की शोभा वैसी की वैसी रहेगी! वह जो नश्वर है—मेरी तरह आता है, चला जाता है! वह जो शाश्वत है—जगन्नाथ की तरह अचल है, स्थिर है, दूसरों को शरण देता है और आगतों को अमरता की ओर संकेतित करता है! मैं आस्तिक नहीं हुआ, न होनेवाला हूँ, परन्तु जगन्नाथ की विशाल उदार-चेतना के आगे नतसिर हूँ। बारम्बार कानों में गूँजता है—"जगन्नाथ भुवनेश्वराः।" क्योंकि जगन्नाथ ने मुझे बताया—मैं क्षणिक हूँ! हाँ,—मैं आस्तिक नहीं; क्षणिक हूँ! वह जो क्षण भर के लिए आता है, फिर चला जाता है! वह जो अस्थिर है, चल है, नश्वर है! वह मैं हूँ!

विद्या ददाति विनयम्

इंगलिश आफिस के बाबू लोगों ने जब सुना कि उनके समाज में एम० ए० (त्रय), का शुभागमन हुआ है तब उन्होंने मुझे इस प्रकार घेर लिया जैसे मैं कोई चिड़ियाघर का समुद्री जानवर था। किसी सज्जन ने आँखें फाड़ जी भरकर देखा तो किसी सज्जन ने उत्सुकता से अपनी पुतलियों को, आँखों में इतना ऊपर टाँग लिया जैसे भारतेन्दु बाबू की इन पंक्तियों को चरितार्थ करना चाह रहे हों :—"बिना प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे।

देख लीजौ आँखें ये खुली ही रहि जायेंगी।"

बाबू समाज ने मुझे इतनी श्रद्धा देनी आरम्भ की कि मैं उसके भार से पसीने-पसीने होने लगा। मेरी ख्याति आर्यभूमि बाबू-समाज से उत्तर दिशा की ओर बढ़ी तो किन्नर-प्रदेश ऑफिसर-साम्राज्य में प्रवेश कर गई। दक्षिण दिशा की ओर बढ़ी तो किष्किन्धा-पुरी चपरासी-सम्प्रदाय में छा गई। पश्चिम दिशा की ओर बढ़ी तो साक्षात देवलोक मंत्री-नगर की भूमि पर विराजमान होने लगी। पूरब की ओर नहीं बढ़ सकी कारण उधर पहाड़ थे और पहाड़ों के बाद रेगिस्तान थे और उनके बाद भी ध्रुवों के प्रदेश थे। इसलिए समझिए मार्ग अवरूद्ध था। सार्थवाह जा नहीं सकते थे, फिर ख्याति ले जाने का प्रश्न ही छोड़ दीजिए। ख्याति के पीछे जो किंवदन्तियाँ, कथाएँ और उक्तियाँ चल रही थीं उनमें मुख्य थीं:—"हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत में एम० ए० है। इतना बड़ा विद्वान तो कभी आफिस में आया ही नहीं।" बाबू-समाज ने अश्वमेध आरम्भ कर दिया। घोड़ा छूट गया किसी ने लगाम तक का स्पर्श नहीं किया। परिणाम स्वरूप सभी ने बाबू-समाज का आधिपत्य मान लिया और इसका नेतृत्व मुझे मिला।

आधिपत्य के दूसरे ही दिन किन्नर-प्रदेश का एक दूत आया और मेरी प्रशंसा में कहने लगाः—"सेक्रेटरी साहब सरकार की बड़ी तारीफ कीहिन हैं और बोलिन हैं कि यह चिट्ठी और कागद दे आओ।" संदेश सुनाकर जब वह चला गया तब मैंने पत्र-पुष्प अर्थात उस कागज रूपी फूल का अवलोकन किया। अनुरोध किया गया था कि आप हिन्दी-अंग्रेजी दोनों जानते हैं इसलिए जरा कृपा करके इन पंक्तियों का हिन्दी में अनुवाद कर दीजिए। अनुवाद की पंक्तियाँ कोई पन्द्रह फुलिस्केप थीं। समूचे कागज में सिर्फ चार ही वाक्य थे जिनका अनुवाद थाः—"पिछड़ी जातियों की कुल संख्या, बेकारों की संख्या, अशिक्षितों की संख्या, प्रतिशत का हिसाब," शेष पन्द्रह पृष्ठों में केवल संख्याएँ थीं जिनका अनुवादक कोई नकलनवीश भी हो सकता था। मुझे तो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानी थी। क्योंकि :—

"अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमा।
उत्तमा मानमिच्छन्ति माना हि महतां धनम् ॥"

मैंने नकलनवीशी आरम्भ कर दी। अभी दो-चार पृष्ठों तक ही पहुँचा था तब तक देवलोक का एक दूत आ पहुँचा और सन्देश सुनाने लगा :— "आपकी बड़ाई देव-लोक तक पहुँच गई है! इसलिए मंत्री जी के दौरे का कार्यक्रम यहाँ है। इसका भी अनुवाद कर दीजिए। जरूरी है इसलिए इसे पहले कीजिए।" मैं धर्म-संकट में पड़ गया।

देव-लोक की प्रतिष्ठा बड़ी होती है, यही ध्यान कर दौरे का कार्यक्रम अनुवाद करने लगा। कोई महीने भर का कार्यक्रम था। तीस फुलिस्केप थे सब संज्ञा से अर्थात तिथि, समय और स्थान के नामों से भरे थे। बीच-बीच में खाली जगह क्रिया से भरी गई थी जिसमें कुल दो ही शब्द वर्तमान थे 'आगमन' और 'प्रस्थान'। कहीं-कहीं तीसरा शब्द रेगिस्तान के वृक्ष की तरह एक झलक देकर दृष्टि से ओझल हो जाता था और वह था 'हाल्ट' अर्थात् 'ठहरना'। मैंने दूत से कहाः—"यह तो थोड़ी हिन्दी जाननेवाले भी कर सकते हैं।" दूत अति प्रसन्न और गदगद स्वर में श्रद्धा का भाव

लाते हुए मधुर-मधुर स्वर में बोला :—"मगर आपका अनुवाद बहुत अच्छा होगा इसीलिए यह कष्ट·······।" प्रसन्नता में उसके कंठ आबद्ध हो गए थे, जैसे वह भलीभाँति यह जानता था :—

"स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषा पिता ।
ज्ञातयः स्नान-पानाभ्यां वाक्य दानेन पण्डिताः ॥"

मेरा काम अनुवादक का नहीं था। मुझे तो खून और कानून के सिलसिले में हाईकोर्ट से पत्र-व्यवहार करने का काम मिला था और मेरा पद अंग्रेजी में "क्राइम एण्ड ला कर्ल्क" के नाम से विभूषित था। लेकिन अन्यान्य गुणों के कारण मुझे अन्य कार्य सौंपे जाने लगे। दौरे का कार्य-क्रम नागरी लिपि में उतारकर ज्योंही सिर उठाया कि अपने बड़े बाबू उपस्थित हो गये। गिड़गिड़ाकर विनम्रता पूर्वक काँपते हुए कहने लगेः—"हम शरकारी हुकुम का वजह शे हिनदी शीखता है। जरा एक घंटा को वाश्ते टाइम निकालकर हेल्प ठो कर दीजिए। माश्टर रखने को खातिर पैशा नहीं है आऊर आपको जैशा विद्वान ठो भी मिलना दुश्वार है।"

बड़े बाबू थे मेरे हाकिम। जो भी फाइल हो इनके सामने से होकर इनकी मर्जी से आगे बढ़ेगी। फिर मेरी भी हरकतों की देख-भाल वही करते थे। उनका अनुरोध कैसे अस्वीकार किया जा सकता था ? फिर इसमें दूसरों के कल्याण की बात थी और कल्याण करने से दुर्गति पास नहीं फटक सकती।

अन्त में मुझे कहना पड़ा :—"ठीक है, पाँच बजने के बाद, एक घंटा आफिस में ही पढ़ा देंगे।" "थैंन्क यू।"—कह कर वे चले गए। थोड़ी देर पश्चात फिर आकर बोले :—"'किसी' में छोटी 'ओ' होता है ना बड़ी 'ओ'।" मैंने उन्हीं की भाषा में कहा :—"'क' में छोटी और 'स' में बड़ी। पहली छोटी और दूसरी बड़ी।" उन्होंने तुरत ही कागज पर लिखकर मेरे सामने रख दिया :—"जरा देख दीजिए तो।" मैंने देखा तो मेरा कथन

उन्होंने उलटा लिख लिया था। मैंने शुद्ध करते हुए कहा :—"दीर्घ 'स' में लगती है।" उन्होंने शिकायत के स्वर में कहा :—"हिन्दी में यही ठो बड़ो गड़बड़ है। छोटी-बड़ी कहाँ-कहाँ ना लगेगा कोनो ठिकाना नहीं?" मैंने सोचा यह सब उन्हें बाद में बताऊँगा। अभी समय अधिक लग जाएगा और मुझे 'सेक्रेटरी' साहब का काम भी करना है। मैंने उन्हें कहा :—"ठीक है। शाम को आपको सीखने का सारा तरीका बता दूँगा।" वे गदगद् होकर मुँह फाड़ हँसने लगे और जाते-जाते फिर पूछने लगे :—"अाच्छा, 'किसी' में स्त्रीलिङ्ग होता है ना पुलिङ्ग?" "यह दोनों के साथ लगता है।"—मेरे उत्तर पर वे आश्चर्य चकित हो गए। आश्चर्य से बोले :—"अच्छा भाई, ई ठो हमको आज साँझ को बताइएगा तो। किश माफिक दोनों होता है?" मैंने समय अधिक लगने के विचार से उन्हें 'हाँ' कहकर चलता किया।

मरीज के सिर से ज्वर का ताप हटा तो खाँसी ने गला धर दबाया। कार्यालय के खुशमिजाज बाबू बटेरन सिंह कोई सन्देश लेकर पहुँच गए और मेरे पीछे खड़े होकर मुझे अपलक निहारने लगे। मैंने कारण पूछा तब भी उनकी मुद्रा वैसी ही रही, मुँह से कोई ध्वनि नहीं निकाल सके और वैसे बन गए जैसे अजन्ता की कोई कला-कृति हों। केवल उनके हृदय की धड़कन से उनके प्राणी मात्र होने का अनुमान लगाया जा सकता था। वह मैंने लगाया भी और उसके आधार पर ही मुझे ज्ञात हुआ कि उनकी अान्तरात्मा मुझसे कह रही थी :—"जाके कृपा पंगु गिरि लांघे, अंधे को सब कुछ दरसाई।" मैंने विनम्रता से उनके शरीर को जरा-सा झकझोरते हुए पूछा :—"कहिए क्या बात है? आप चुप क्यों हैं?" उन्होंने अपनी मुद्रा बदल दी और जूही की लजीली कली की तरह शरमाते हुए बोले :—"एक अनुरोध था, लेकिन शरम आती है। अगर आप अभयदान दें तो कुछ निवेदन करूँ।" मैंने कहा :—"हाँ, हाँ निडर होकर कहिए।" तब उनके अनुरोध का मेघ झर-झर बरस पड़ा :—"मेरी एक प्रेमिका हैं। उनके लिए मेरी ओर से एक प्रेम-पत्र लिख दीजिए। मैं अपनी पीर खुद

कहने में लाचार हूँ। इसलिए मेरी पीर को आप अपने दिमाग से जिला देने की कृपा कीजिए।"

मैंने कुछ हिचकते हुए कहा:—"भाई। मैंने तो कभी प्रेम-पत्र लिखा नहीं इसलिए आपका प्रेम-पत्र कैसे लिख सकूँगा ? उन्होंने अनार के दाने की तरह दाँत निपोरते हुए कहा :—"आप हिन्दी के एम० ए० हैं। प्रेम-पत्र कैसे नही लिख सकते हैं ? लगता हैं आप मुझसे नाराज हैं। "—इतना कहते ही उनकी मुद्रा पतझड़ के वृक्ष की तरह उदास हो गई। झर-झर बरसता हुआ मेघ, धूप की मार से बिखर गया। मैं सोचने लगा क्या करूँ ? यह सज्जन अत्यन्त दुःखी हो गए। हृदय पर गहरा आघात-सा लग गया। तब तक दर्दभरी उनकी आवाज मुझ तक फिर पहुँची :—"साहब ! गरीबों की बात सब टाल देते हैं, अभी आपने सबके काम कर दिए किन्तु मैं ही एक बदनसीब हूँ जिसकी उपेक्षा आपने भी कर दी। अब आप ही बताएँ मैं कहाँ जाऊँ ? पृथ्वी भी तो नही फट जाती जो उसी में समा जाता। कहीं ठौर नहीं !" उनके नेत्र कातर हो उठे। मैं बार-बार परोपकार के माध्यम से पुण्य प्राप्त कर चुका था। इस बार मन पुण्य के लिए तैयार नहीं हो रहा था, किन्तु एक ओर उनके दयनीय कातर नेत्र थे और दूसरी ओर पुण्य के साथ-साथ अन्य लाभ भी थे :—

"पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः।
वृद्ध प्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः ॥"

मैंने स्वीकारते हुए कहा :—"काम तो आपका कर देता लेकिन क्या लिखूँ ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता।" उन्होंने कुछ धीरज पाकर कहा :—"चिट्ठी के ऊपर लिख दीजिए—'लिखता हूँ खतें खून से जिन्दा न समझना, मरता हूँ तेरे इश्क पर स्याही न समझना।' उसके बाद दिल की पीर लिख दीजिए। सब से आखिर में विरह-वर्णन खूब जायकेदार बना दीजिए—शीरी-फरहाद की तरह ! बस !" मैंने कहा—"जैसी आपकी इच्छा।" और प्रेम-पत्र उनके विचारों के आधार पर लिखकर उन्हें नौ-दो-ग्यारह बनाया।

गले से खाँसी का झटका नीचे उतर गया तब सिर-दर्द आ गया। दूर के कोने में बैठे हुए दो टाइपिस्ट बाबू आपस में मल्ल-युद्ध कर बैठे। एक ने दूसरे को दो चाँटें मारे तो दूसरे ने उसका मुँह नोच लिया। झगड़े के फैसले के लिए अस्त-व्यस्त होकर मेरे सम्मुख आ खड़े हुए और एक ही साथ शंखनाद करते हुए बोले :—"यह दोहा किसका है ? सूरदास का या तुलसीदास का।" मैंने कहा :—"कौन सा दोहा ?" तब एक ने बताया :—

"लड़की जल कोयल भई, कोयल जल भई राख।
मैं डाइन ऐसी जली, कोयल भई न राख।"

दोहे का अटपटा रूप देखकर मैं स्थिति सम्हालने की चेष्टा करने लगा। तब तक एक ने कहा :—"यह सूरदास का दोहा है।" दूसरे ने कहा :—"सूर क्या लिखेगा ? वह तो अन्धा था। यह तुलसी भगवान का लिखा है जिन्होंने हनुमान चालीसा लिखा है।" फिर हाथ तैयार होने लगे। मैंने गम्भीरता पूर्वक विचार करते हुए कहा :—"देखिए ! अभी आप दोनों शान्त होकर आफिस का काम करें। मैं कल वह पुस्तक लेकर आऊँगा जिसमें इसकी चर्चा है, तब आपको इसका राज बताऊँगा।" "ठीक है, कल ही सही।"—कह कर वे अपने स्थान पर जा बैठे लेकिन गर्मी का वातावरण ज्यों का त्यों बना रहा।

एक ने कहना प्रारम्भ किया :—"फूल आ, फूल प, फूल ग, फूल द फूल हा, फूल हो।" दूसरे ने उत्तर दिया :—"चर तू, चर तो, चर बैं, चर ल, चर की, चर दु, चर म, चर है।" इस बार मल्ल-युद्ध करने के बजाय वे मेरे पास सीधे दौड़ आए और पूछने लगे :—" साहब ! कौन सी भाषा अच्छी मानी जाती है फूल की या चर की।" मैंने सोचा किसी एक को अच्छा कहना झगड़े और विवाद को बढ़ाना है। इसलिए उत्तर दिया :—भाई इसका भी उत्तर कल ही दूँगा। आज दूसरा काम कर रहा हूँ। फिर यह विवाद ऐसा है कि इसका निर्णय इतनी जल्दी से नहीं किया

जा सकता।" इस उत्तर पर वे प्रसन्न होकर चले गए और उनकी गर्मी शनैः शनैः मन्द पवन के झकोरों की तरह ठंढी होने लगी।

इसी बीच मँझधार की नौका सदृश डगमगाते हुए बड़े बाबू पधारे और बोले :—"हे भाई ! जरा यह आफिश का चिठी हिनदी में है इशको शुपरवाइज कर दीजिए।" मैंने उनके आदेशानुसार उस पत्र को देखा जिसमें 'मंत्रीमंडल', 'सूचि', 'प्रशाषा', 'सचीव', 'द्वीतिय', 'प्रतीवेदन' आदि शब्द थे। मैंने उन्हें शुद्ध करते हुए उन्हें क्रमशः 'मंत्रिमडल', 'सूची', 'प्रशाखा', 'सचिव', 'द्वितीय', 'प्रतिवेदन' के रूप में बदल दिया तब वे कहने लगे :—"भाई ! आपको तो भगवान ने हमारे पाश भेज दिया। कृपा कर रोज थोड़ा आफिश में हिन्दी का शुपरविजन कर दीजिए। हिन्दी-शेवा का काम है।" मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। क्या करता ? बड़े बाबू वृद्ध भी थे और उनके बुढ़ापे का विचार करना आवश्यक ही था। क्योंकि : —"अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारिं सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम्॥

बड़े बाबू नेपथ्य की ओर अभी बढ़ ही रहे थे तबतक निबन्धक अर्थात आफिस के'रजिस्टार' साहब प्रकट हो गए और करबद्ध प्रार्थना करने लगे :—"आपका यश-गान सुनकर आया हूँ। कृपा कर मेरे घर कल शाम को छट्ठी है। उसके लिए आपको निमंत्रण है। लेकिन एक कष्ट है कि आप एक न्योता बना दीजिए। आज ही प्रेस में छपेगा। कल बँट जाएगा।" उनके अनुसार न्योता बनाना कठिन था लेकिन अस्वीकार भी नहीं कर सकता था। सोचता रहा क्या लिखूँ ? कैसा बनाऊँ ? तबतक वे स्वयं बोलने लगे :—"कोई ज्यादा झंझट करने की जरूरत नहीं। शिर्फ सादा बना दीजिए जो सब समझ सकें। हाँ, जरा सुन्दर हो। जैसे सबसे ऊपर लिखा हो :—"भक्तों में जिस भाव से आते हैं भगवान, उसी भाव से आप भी, आवें हे श्रीमान।" मैं उनका अर्थ समझ गया। निमंत्रण-पत्र लिखकर उन्हें सप्रणाम विदा किया। यदि ऐसा नहीं करता तो भेद-भाव होने की शंका हो सकती थी और यह मेरे लिए उचित नहीं था।

'रजिस्टार' के पीछे कार्यालय के चपरासी किष्किन्धापुरी निवासी लल्लू राम खड़े थे। 'क्यू' में थे इसलिए इस बार उनका नम्बर आ गया। सम्मुख विराजमान होकर निवेदन करने लगे :—"हुजूर! मेरा भी एक काम है। जरा यह मनिआर्डर फारम भर दीजिए। हिन्दी में है।" मैंने कहा :—"भाई यह तो और कोई भी भर सकता है?" वे बोले :—"हुजूर और लोग भी भर सकते हैं लेकिन आप जरा अच्छा भरिएगा।" मैंने विवश होकर उनका फारम उनके कथनानुसार भर दिया क्रोध तो अवश्य आ रहा था लेकिन यह स्मरण कर शान्त हो गया कि :—

"क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रम :।
स्मृति भ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥"

इसके पश्चात पाँच बजे तक टी० ए० फारम भरने के, आवेदन पत्र लिखने के—इतने सारे काम आ गए कि दम लेने की फुर्सत नहीं रही। पाँच बजने के बाद एक घंटा बड़े बाबू को व्याकरण पढ़ाया और उनके लिए चौथे दर्जे का एक व्याकरण-ग्रन्थ भी लाने का वचन दिया। तत्पश्चात अपने कार्यालय के काम समाप्त किए जो दिनभर जन-सेवा करते रहने के कारण शेष बच रहे थे। जब उनसे निबटकर घर को चलने लगा तभी देव-लोक के एक प्रमुख गण पधारे और कहने लगे :—"जाते-जाते जरा दौरे के कार्यक्रम को दुहरा दीजिए। इसमें हिन्दी कठिन हो गई है। आसान बना दीजिए। आगमन और प्रस्थान की जगह पहुँचना,छूटना कर दीजिए।" उनके आदेशानुसार मैंने शुद्धीकरण प्रारम्भ किया और जब शुद्धीकरण समाप्त हुआ तो मंत्री जी डाकगाड़ी बन गए। अमुक तिथि को, अमुक स्थान से, अमुक समय में, मंत्री जी का छूटना और अमुक तिथि को, अमुक समय में, अमुक स्थान को पहुँचना।"—'रेलवे टाइमटेबुल' की तरह दौरे का कार्यक्रम अत्यन्त मनोरम और लोकोपयोगी बन गया था।

रास्ते में चला जा रहा था तभी एक सज्जन आ मिले और बोले,—"मैंने सरल अनुवाद-कला पर एक ग्रन्थ लिखा है। इसे जरा

देख दीजिए।" मैंने शीघ्रता के कारण उनका ग्रन्थ ले लिया। दिनभर का थका-माँदा जब नौ बजे रात्रि को घर पहुँचा तब पत्नी जी मधुर मुसकान के साथ बोलीं :—"मालूम होता है काम जिम्मेवारी का मिला है तभी इतनी रात गए लौटे हैं।" मैंने स्वीकृति दे दी। वैसे भी सोचा नौकरी में मुझे पैसे नहीं मिलेंगे लेकिन विद्वान समझा जाता हूँ। विद्वान रहने पर भी यद्यपि वेतन नहीं अच्छा मिलेगा, उतना ही मिलेगा जितना एक आई० ए० पास किरानी को—लेकिन मैंने यह सोचा :—

"गन्धसुवर्णो फलमिक्षुदण्डे नाऽकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य।
विद्वान धनी भूपति दीर्घजीवी धातुः पुरा-को ऽपि न बुद्धिदोऽभूत॥"

बिस्तर पर सोते समय मार्ग में प्रदत्त सरल अनुवाद-कला की पुस्तक पढ़ने लगा जो मेरे अवलोकन के पश्चात शायद प्रेस में जानेवाली थी। ग्रन्थ के ऊपर मोटे अक्षरों में लिखा था 'प्रेस कापी'। सोचा आधा इसे आज समाप्त कर दूँ, एक भार तो हल्का हो जाएगा और जल्दी-जल्दी पढ़ने लगा। दो पृष्ठ पढ़ पाया था तभी मन चंचल हो उठा। आप पूछेंगे क्यों? तो मैं उन दो पृष्ठों की पंक्तियाँ आपके सामने रख दे रहा हूँ :—

"सरल-अनुवाद कला की निपुणता या सरलता प्रधानतः शब्दों के जनरूपों पर निर्भर करती है। यह जनरूप लोक-धारा के अनुसार बनते-बिगड़ते हैं। कलाकार को इस लोक-धारा का अनुमोदन करना चाहिए। देखिए यहाँ एक उदाहरण देकर समझाता रहा हूँ। कुछ क्लिष्ट और कठिन पंक्तियों का सरल अनुवाद और उनके विभिन्न जनरूपों की चर्चा कर रहा हूँ। क्लिष्ट पंक्तियाँ ये हैं जिन्हें किसी भी सम्मेलन से अस्वीकृत किया जा सकता है और जो लोक-धारा के प्रतिकूल हैं:—

"अलका इससे भिन्न है। वहाँ प्रेम व्याकुल हृदयों में पीड़ा भी है, ललक भी है, वेदना भी है और उन्माद भी। हाथ से तोड़ लिए जाने योग्य पुष्पों की मनचली छाया के नीचे यहाँ की कुंकुम-वर्णा किशोरियाँ मंदाकिनी की फुहारों से शीतल बनी हुई मंद-मंद संचारी वायु के स्पर्श से पुलकित होकर रत्न बालुकाओं से क्रीड़ा करती हैं।"

इनका सरल अर्थात लोक-धारा से बनाया हुआ अनुवाद इस प्रकार होगा जिसे लोक-धारा ने सर्वसम्मति से बनाया है :—"अलका इससे अलग है। वहाँ प्यार-पागल दिलों में तड़पन भी है, ललक भी है, दर्द भी है और दीवानगी भी। हाथ से तोड़ लिए जाने लायक फूलों की ज़ुल्फेदार छाया के नीचे वहाँ की नारंगी रंग की सोलहसाली लड़कियाँ झेलम* की फुहारों से ठंढी बनी हुई धीरे-धीरे नाचनेवाली हवा की छुवन से बाग-बाग होकर सोनबालू से खेलती हैं।"

अब पाठक गण विचार करें कि सरल हिन्दी का आन्दोलन कैसे सफल नहीं हो सकता? इस अनुवाद को सफल बनाने में कितनी ही बार जनता के अनुकूल और आज्ञानुसार हेर-फेर किए गए हैं। लोक-धारा सत्य है! शिव है!! सुन्दर है!!! आगे लोक-धारा द्वारा निर्मित शब्दों के जन रूपों का क्रम-विकास भी दिखलाया जा रहा है :—(यहाँ मैं उनके चार्ट का कुछ ही अंश आपके सामने रख रहा हूँ)।

मूलरूप	चतुर्थांश जनरूप	तृतीयांश जनरूप	अर्द्ध जनरूप	पूर्ण जनरूप	महा जनरूप
हृदय	मन	तबीयत	चाह	दिल	नहीं होता।
व्याकुल	आकुल	पागल	वही	नहीं होता	बौराहा।
उन्माद	पागलपन	दीवानगी	वही	वही	मताहा।
शीतल	ठंढी	वही	नहीं होता	अभी अज्ञात है	अज्ञात है।
पुलकित	प्रसन्न	खुश	बाग-बाग	अज्ञात	नहीं होता।
झबरीली	ज़ुल्फेदार	अज्ञात है	नहीं होता	नहीं होता	नहीं होता।
कुंकुम वर्ण	कुंकुम रंग की	कुंकुम रंगी	कुंकुम जैसी	नारंगी रंग की	गेरूअई।
किशोरियाँ	कुमारियाँ	सोलह वर्षी बालाएँ	सोलह वर्षी कन्याएँ	सोलहसाली लड़कियाँ	सोलह साली छोहरियाँ।
मंदाकिनी*	गंगा	यमुना	झेलम	वही	बदल सकता है।
संचारी	विचरण करनेवाली	भ्रमण करनेवाली	घूमनेवाली	नाचनेवाली	नचनिया।

रत्न बालु- स्वर्ण रेतों सोने के सोन बालू से वही सोन गर्दा से।
काओं से से बालू से

नोट:— *मंदाकिनी का जनरूप यहाँ भेलम होता है क्योंकि जनता इसी को समझ पाती है और गोर करना चाहिए कि वह पंजाब की है।

अलका नाम है इसलिए इसका बदलना कोई जरूरी नहीं लेकिन यदि जनता चाहती है तो उसे समझाने के लिए इसे पंजाब भी कहा जा सकता है।

इस नक्शे के शब्दों (लफाजों) का जनरूप इस तरह होगा:—मूल का जनरूप = असली, और महाजन रूप का छवमहला माने। रूप का जन रूप = चेहरा। चतुर्थांश = दूमहला माने। तृतीयांश = तिमहला माने। अर्द्ध = चौमहला माने। पूर्ण = पँचमहला माने। माने का महाजनरूप अरथ होता है। और क्रम-विकास का बढ़ाव सिलसिला।—लेखक।"

अब एक नई चिन्ता सता रही है। इस जन-सेवा से तो बेमौत मर जाऊँगा। सोचता हूँ किसी का काम न करूँ। रूखे स्वर में सबको टाल दूँ मगर बार-बार कानों में गूँज उठता है—'विद्या ददाति विनयं.......।' क्रोध में सोचता हूँ इस वाक्य का रचयिता कोई जमींदार या पूँजीपति होगा जिसने इसे केवल शोषण करने के निमित्त बनाया है। आवेश में सोचता हूँ कोई धूर्त होगा जिसने इसे मुफ्त में काम निकालने के लिए बनाया है। दुखी होकर सोचता हूँ कोई संन्यासी होगा, केवल त्याग, कष्ट-सहन और शरीर-ताप के लिए इसे बनाया है। प्रसन्न होकर सोचता हूँ कल्याणकर्त्ता होगा कल्याण के लिए इसे बनाया है। भक्तिमय होकर सोचता हूँ वह अवश्य ही परम पिता परमेश्वर का प्रतिनिधि होगा जिसने समस्त जगतारण के लिए लिखा है—विद्या ददाति विनयं..........।

गंगा-तट का सूर्य-ग्रहण

सूर्य-ग्रहण

मैं वर्ष में एक बार साकार होता हूँ अन्यथा मेरा कोई रूप नहीं है ! सूर्य की दुर्बलता से मेरी उत्पत्ति है ! कालिमा और अन्धकार मुझे प्रोत्साहित करते हैं ! मैं कह नहीं सकता क्यों मुझे लोग संक्रान्ति का दूत मानते हैं ?

केतु की वक्रता और उसी की प्रभावशीलता से मेरा जन्म है, इसीलिए मैं उसके प्रति आभारी हूँ ! उसकी इंगिति पर बनता हूँ, मिट जाता हूँ ! अपने में मैं कुछ भी नहीं ! परन्तु संसार के प्राणी मुझसे भयभीत होते हैं ! मैं उनके पाप का दोषी हूँ ! मेरे अस्तित्व को मिटाने के लिए वे प्रार्थना करते हैं। पूजा के पुष्प बहाते हैं ! इसीलिए मैं मृत्यु के वशीभूत हूँ ! क्षणभंगुर हूँ ! मैं अपनी ही आकृति पर लज्जित हूँ ! शंकित हूँ ! क्यों ? पराधीनता मेरे भाल की रेखा है ! मैं उसे नहीं मिटा सकता ! मैं स्वयं नहीं हूँ ! मेरा अहम एक अशुभ है ! एक पाप है !

गंगा-तट

जड़ के अतिरिक्त मेरी कोई आस्था नहीं ! मैं बधिर हूँ ! लहरें आती हैं और मेरे कानों में झंकारें भर जाती हैं ! मैं रिक्तता के वशीभूत हूँ ! गंगा के उपासक आते हैं और मुझमें कोलाहल भर जाते हैं ! धाराएँ मुझे बनाती हैं, मिटाती हैं ! उपासक मुझे सजाते हैं, सँवारते हैं और उजाड़ते हैं ! मेरा स्वयं है, किन्तु अन्य का उसे आभार चाहिए ! पापरत जीवों के चरण मेरी छाती पर अपनी छाप उगा देते हैं ! मैं प्रतिरोध नहीं कर सकता ! एक साथ सहस्र चरण मुझे रौंद जाते हैं ! लहरें गंगा का

उच्छिष्ट मुझे समर्पित कर जाती हैं ! मैं क्या हूँ ? दूसरों के सहारे बढ़ता हूँ—घटता हूँ ! मेरा भी एक क्षीण व्यक्तित्व है ! परोमुखी ! मेरा अहम् बाधित है !

जन-समूह

मैं अशुभ के प्रकोप से भयातुर हूँ ! मुझे मरण की चिन्ता है, रोग से कष्ट है, अशान्ति से आशंका है ! मैं कातर हूँ ! मुझे त्राण चाहिए ! मेरे हाथ सुडौल हैं किन्तु पूजा के फूल अर्पित करने के लिए, त्राण की याचना करने के लिए ! मैं अपने पाप स्वयं नहीं मेट सकता, उसके लिए गंगा की शरण चाहिए ! मैं सूर्य का उद्धार चाहता हूँ क्योंकि मुझे अंधकार से भय है ! मैं अपनी इकाइयों में असंख्य हूँ और मेरी हर इकाई त्राण की याचिका है ! सम्पूर्णतः मैं दूसरों से माँगता हूँ और अपने कोड़ को भरता हूँ ! मेरी पिपासा असीम है ! इसलिए प्रत्येक वर्ष मैं उमड़कर आता हूँ ! बार-बार उमड़ना मेरी पिपासा की परिभाषा है ! मैं अतृप्त हूँ ! असंतुष्ट हूँ ! क्यों ? मेरी शंका मुझे ग्रस लेती है ! मेरे पाप मुझे छल जाते हैं ! मेरा स्वयं है, किन्तु प्रवंचना और तृषा में डूबा हुआ ! मुझे स्वयं पर विश्वास नहीं ! मेरा अहम्—मेरी कातरता है !

प्रतिद्वन्दी

सन्ध्या का समय था। मैं साइकिल चलाता हुआ दफ्तर से घर की ओर लौट रहा था। रास्ते में एक मित्र से भेंट हो गई जो पैदल चले आ रहे थे। मैंने उनसे मजाक में पूछा :—"आप पैदल क्यों चलते हैं ?"

उन्होंने उत्तर में ही प्रश्न किया :—"क्यों ?"

मैंने भी उत्तर प्रश्न में ही दिया:—"इससे क्या लाभ है ?"

फिर उन्होंने उत्तर देने के लिए प्रश्न ही अपनाया :—"साइकिल से ही क्या लाभ है ?" मैंने सोचा कहीं मेरा उत्तर सीधे उत्तर ही न बन जाए ; इसलिए मैंने फिर प्रश्न का उत्तर प्रश्न से ही देने के लिए कहा :—"पहले आप ही बताएँ पैदल चलने से क्या लाभ ?"

इसबार उन्होंने प्रश्नों के क्रम से ऊबकर उन्हें समाप्त करने की दृष्टि से कहा :—"पाँव चलाकर आदमी कम-से-कम अपना भार तो ढो लेता है। स्वारथ तो है।"—उनका उत्तर दार्शनिक जैसा था।

मैंने भी प्रश्नों का क्रम छोड़कर उत्तर दिया :—"साइकिल चलाकर आदमी अपना भार भी ढो लेता है और समय भी बचा लेता है। स्वारथ भी और बुद्धिमानी भी। इन्हीं दो गुणों के चलते यह दो पहियों का होता है।"

मेरे मित्र 'माना जीत गए' कहकर चुप हो रहे और मैं तेजी से अपनी तार्किक जीत पर मुस्कुराता हुआ साइकिल को आगे बढ़ाता गया। किन्तु कुछ ही दूर आगे गया था तब तक किसी रिक्शेवाले ने बगल से आवाज दी :—"बाबू जी ! रिक्शा चलाकर आदमी अपना भार भी ढो लेता है, समय भी बचा लेता है और दूसरे का भार भी खे लेता है। स्वारथ भी, बुद्धिमानी भी और परमारथ भी। इसी लिए यह तीन पहियों का होता है।"

दृष्टिकोण

किसी धरती के अंचल में एक पर्वत निवास करता था। उसी के पड़ोस में एक छोटा-सा मन्दिर था जहाँ कुछ पुजारी रहा करते थे। एक बार एक परदेशी हंस कहीं से उड़ता हुआ उस पर्वत के पास आ पहुँचा। उसने पर्वत को उदास देखकर पूछा :—"पर्वतराज! इस रम्य प्रकृति की गोद में रहकर तुम उदासीन क्यों हो?"

पर्वत ने कहा :—"मैं अपने इन पड़ोसी पुजारियों की मूर्खता पर चिन्तित हूँ।" हंस ने उत्सुकता से कहा:—"ये पुजारी मूर्ख कैसे हैं?"

पर्वत ने व्यंग्य से कहा :—"कुछ दिन पहले इन पुजारियों ने अपनी कुल्हाड़ियों से मुझे काट गिराने की चेष्टा की किन्तु जब वे सफल न हुए तो मेरे कटे हुए पत्थरों को लेकर लौट गए। अब मुझे उनके व्यर्थ के परिश्रम पर हँसी आती है और चिन्ता भी।"

पर्वत की बात को हंस ने समझने की चेष्टा की। वह उड़ता हुआ मन्दिर के पास गया और वहाँ कटे हुए पत्थरों की सुन्दर-सी सीढ़ी देख, वापस आकर पर्वत से बोला :—"पर्वतराज! पुजारियों ने व्यर्थ का परिश्रम नहीं किया। उन्होंने काटे गए पत्थरों की एक बहुत ही सुन्दर सीढ़ी बनाई है जिसपर चढ़कर वे प्रतिदिन मन्दिर में प्रवेश करते हैं। अब तो तुम उन्हें मूर्ख नहीं समझते?"

पर्वत ने कहा :—"क्यों नहीं? जो अपने परिश्रम से काटे और ढोए हुए तत्त्व को अपने चरणों के योग्य समझते हैं, वे मूर्ख नहीं तो और क्या?"

पर्वत की बात को हंस ने फिर समझने की चेष्टा की। वह उड़ता हुआ

मन्दिर के पास गया और इस बार मन्दिर को केवल बाहर से ही न देख, उसे अच्छी तरह, भीतर और चारो ओर घूम-घूमकर देखा। मन्दिर के भीतर उन्हीं कटे हुए पत्थरों की बनी देव-मूर्ति को स्थापित देख वह आश्चर्य चकित हो गया और लौटकर पर्वत से बोला :—"पर्वतराज! पुजारियों ने अपने परिश्रम से काटे और ढोए हुए तत्त्व को अपने चरणों के योग्य नहीं समझा है, वरन् उन्होंने उसकी देवमूर्ति बनाकर उसे अपने मस्तक और हाथों की पूजा के योग्य समझा है। उनकी देवमूर्ति की शोभा अनुपम है! अब तो तुम उन्हें मूर्ख नहीं समझते?"

पर्वत ने फिर उसी स्वर में कहा :—"क्यों नहीं? एक ही पत्थर से दोनों का निर्माण कर जो सीढ़ी और भगवान में अन्तर नहीं समझते, वे मूर्ख नहीं तो और क्या?"

हंस इस बार पर्वत की बात समझने की चेष्टा न कर दूसरी दिशा की ओर उड़ गया।

पसन्द

एक मित्र ने मुझे पत्र भेजा जिसमें लिखा गया था कि मैं एक ऐसी कहानी लिखूँ जिसमें अमुक-अमुक गुण हों। पत्र के नीचे उन सभी गुणों का उल्लेख था जिनके आधार पर मुझे वह कहानी लिखनी थी। मैंने कहानी जब पूरी की तब मित्र-मंडली की गोष्ठी बुलाई गई। गोष्ठी में मैंने कहानी सुनाई और उसकी थोड़ी-सी पृष्ठभूमि भी मित्रों को बता दी लेकिन पत्र में जिन गुणों का उल्लेख था उन्हें गुप्त रखा। कहानी पर मित्रों की राय जब प्रारम्भ हुई तब एक मित्र ने कहा :—"यह कहानी असफल है और मैंने इसे इसलिए नहीं पसन्द की कि इसमें निम्नवर्ग की कथा लिखी गई है।"

दूसरे मित्र ने इस क्रम में कहा :—"कहानी इसलिए नहीं बुरी कही जा सकती कि इसमें निम्नवर्ग की कथा है। निम्नवर्ग की कथा लिखना तो अच्छा विषय है। फिर भी यह असफल ही है और मैंने इसलिए नहीं पसन्द की कि इसमें वीभत्स रस का परिपाक है।"

इसी क्रम में तीसरे मित्र ने कहा—"वाह! वीभत्स रस का परिपाक हुआ तो क्या? किसी भी रस का परिपाक होना तो अच्छा ही है। फिर भी यह असफल ही है और मैंने इसलिए नहीं पसन्द की कि इसमें आतंकवादी वृत्ति है।"

चौथे मित्र ने कहा :—"वाह! आतंकवादी वृत्ति होने से ही कोई कहानी बुरी थोड़े ही हो जाती है। फिर भी यह असफल ही रही और मैंने इसलिए नहीं पसन्द की कि यह लम्बी हो गई है।"

पाँचवे मित्र ने कहानी के विषय में कुछ नहीं कहा क्योंकि उन्हीं के बताए हुए गुणों के आधार पर ही वह लिखी गई थी। उन्होंने केवल अपना पत्र सबके सामने रखने का अनुरोध किया। मैंने पत्र खोलकर सब के सामने रख दिया। उसमें जो गुण कहे गए थे, वे निम्न थे :-

(१) कहानी ऐसी हो जिसमें निम्न-वर्ग की कथा हो।

(२) जिसमें वीभत्स रस का परिपाक हो।

(३) जिसमें आतंकवादी वृत्ति हो।

(४) और जो लम्बी हो।

प्रभाव

कल्लू और मोहन, मेरे दो नौकरों में से एक की आदत बुरी हो गई थी। कल्लू शराब पीने लगा था तथा जुआ खेलने का अभ्यस्त बन रहा था। मोहन इन सबसे दूर था। एक दिन जब मैंने मोहन से पूछा :—'क्यों जी ? शहर में रहकर कल्लू यह सब क्या सीख रहा है ? शहर से उसे हटा दूँ क्या ?"

मोहन बोला :—"क्या कहूँ बाबू ? एक मैं भी शहर में रहता हूँ, लेकिन न जुए का मुँह देखा, न शराब की ओर गया। आदमी, आदमी है—उस पर शहर का क्या प्रभाव ?"

कुछ दिनों के बाद एक दिन मोहन को मैंने शराब के नशे में देखा। नशा टूटने पर मैंने उससे पूछा—"क्योंजी ? तुमने भी कल्लू की आदत सीख ली ?" वह बोला :—"नहीं, मालिक ! आदमी पर आदमी का प्रभाव पड़ ही जाता है। कल्लू को क्या कहूँ ? अपने भी पीता है और मुझे भी पीना बता रहा है।"

अस्पताल

अस्पताल के कमरा नम्बर सात में चार चारपाइयाँ थीं। चारों पर मरीज लिटाए गए थे। सन्ध्या समय दो मरीजों की स्थिति में परिवर्तन हुआ। एक बिलकुल ही चंगा होकर अस्पताल से हटाया जा रहा था और दूसरा इसलिए हटाया जा रहा था कि वह मर चुका था।

मरनेवाले मरीज के सम्बन्धियों में से एक ने कहा :—"अस्पताल बड़ी बुरी चीज है। मैंने पहले कहा था कि मरीज को यहाँ न लाया जाए।"

यह सुन कर पास ही खड़े, अच्छे होनेवाले मरीज के सम्बन्धियों में से एक ने कहा। "नहीं भाई, अस्पताल बड़ी अच्छी चीज होती है। देखो तो मेरा मरीज बिलकुल ही चंगा होकर निकल रहा है।"

बगल में बैठे, कई दिनों से इलाज करानेवाले मरीज के एक सम्बन्धी ने संतोष की साँस खींचते हुए कहा :—"भाई जहाँ अच्छाई है, वहाँ बुराई भी है। कहा भी है—'जहाँ धूप वहीं छाया'।"

चौथा मरीज तुरत ही आया था और इलाज अभी आरम्भ ही होने-वाला था। उसके एक सम्बन्धी ने जो पड़ोसियों की बातें सुन रहा था, इस वार्ता को सुलझाते हुए बड़े ही काव्यात्मक स्वर में कहा :—

"न धूप न छाया,
सब ईश्वर की माया।"

हिन्दी आलोचना का नूतन आविष्कार, जिसका
प्रत्येक अंग हिन्दी की उपलब्धि है

रणधीर सिनहा कृत

आकलन

(नवीनतम साहित्य की मीमांसा)

कुछ सम्मतियाँ

आकलनकार की विचार-धारा के विषय में

"आपके विचार बहुत विचारोत्तेजक हैं।"

—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

"हर जगह आपकी सम्मतियों में ताजगी देखी।"

—डॉ० राम बिलास शर्मा

प्रबुद्धता के विषय में

"इसे समझने और इससे कुछ पानेवालों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे, यही कामना है।" —स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय'

विश्लेषण—शक्ति के विषय में

"आपकी विश्लेषण-शक्ति बहुत विलक्षण है। सभी बातों से तो सहमत नहीं हो सका, लेकिन आपकी विश्लेषण-शक्ति की विलक्षणता निस्सन्दिग्ध है। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।"

—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

शैली के विषय में

"आपकी स्वाभाविक शैली है, बाँकपन लिए हुए जैसे 'रूप-तरंग' पर आपका नोट जो शैली की दृष्टि से पसन्द आया।"

—डॉ० रामविलास शर्मा

प्रतिभा के विषय में

"लेखक प्रतिभा सम्पन्न जान पड़ा। ईमानदारी को मैं प्रतिभा की शक्ति (और कुछ हद तक पहचान) मानता रहा हूँ। प्रतिभा अनवरत जीवन और जगत के सम्बन्ध में सच (सही) रिपोर्ट दे सकने का प्रयत्न करती है—क्योंकि सत्य elusive है।

—डॉ० देवराज

प्रयास के विषय में

"आपका प्रयास और प्रयोगशीलता स्तुत्य है।"—जगदीशचन्द्र माथुर

"प्रशंसनीय और सफल प्रयास है।" —राहुल सांकृत्यायन

"पहला एवं मौलिक प्रयास है।" —डॉ० धर्मवीर भारती

"एक बार फिर से दुहरा दूँ कि आपका यह प्रयास मुझे बहुत अच्छा लगा।" —श्री गजानन माधव मुक्तिबोध

हिन्दी-आलोचना में 'आकलन' का स्थान

"समालोचनात्मक साहित्य में 'आकलन' जिस स्वस्थ चिन्तन को लेकर चल रहा है, वह निश्चय ही अनेक आलोचकों का मार्ग एवं दिशा-दर्शन करेगा। कुछ आलोचकों के हाथ मजबूत करेगा और कुछ के विचारों में संशोधन।" —डॉ० रामकुमार वर्मा

"आकलन" द्वारा आपने आलोचना में एक नये मार्ग का अनुधावन किया है। लिखने का ढंग भी नया है।"—

—त्रिलोचन

प्रकाशक—श्रेष्ठ साहित्यागार, पटना। मूल्य ३) रुपए